योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

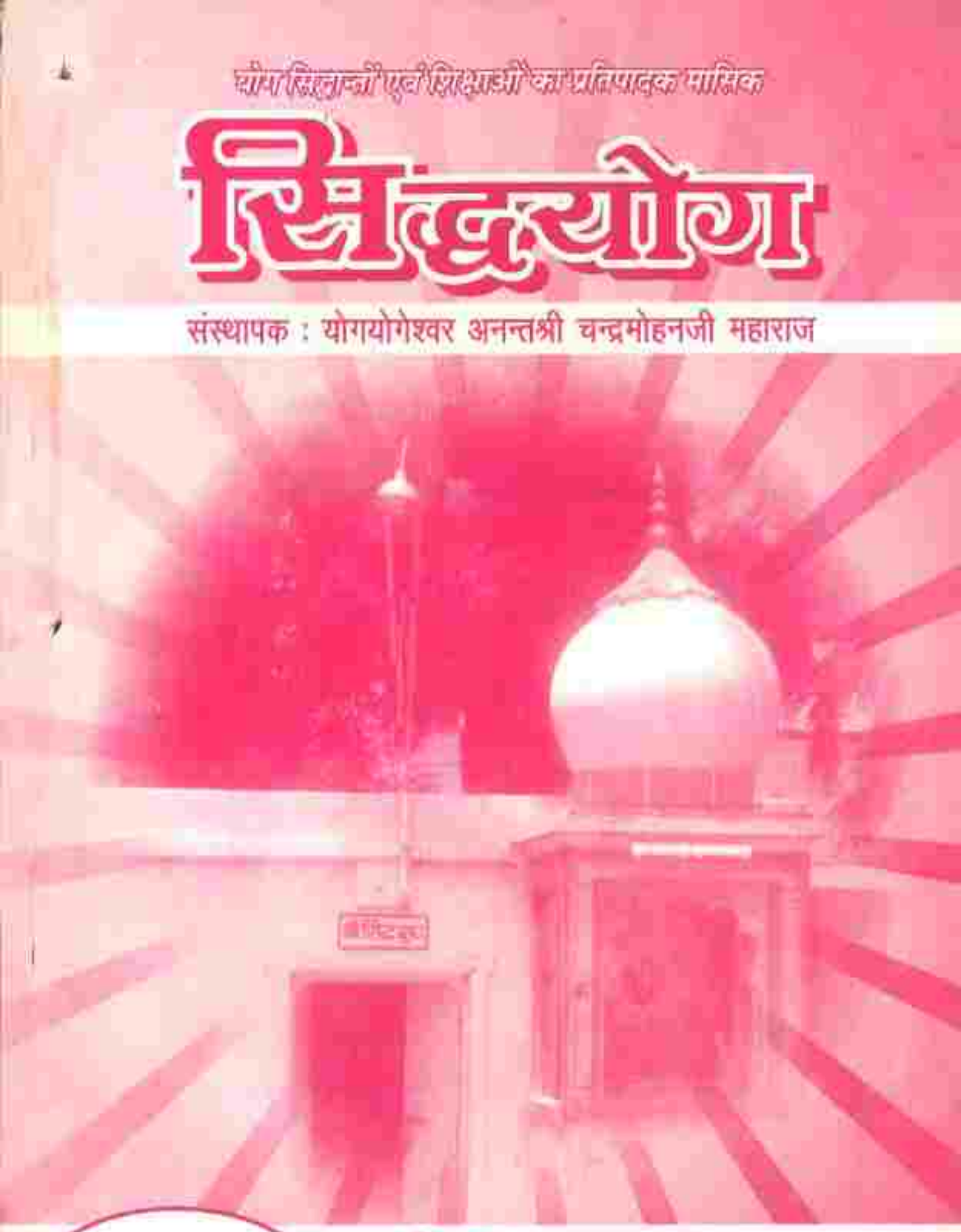

वर्ष : 39 - अंक : 6
सितम्बर, 2006

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृतकण

शीलवृत्तविनीतस्य निगृहीतेन्द्रियस्य च।।
आर्जवे वर्तमानस्य सर्वभूतहितैषिणः।
प्रियातिथेश्च क्षान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च।।
गृहाश्रमपदस्थस्य किमन्यैः कृत्यमाश्रमैः।

(महा० अनु० १४७)

अर्थात् जो शील और सदाचार से विनीत है, जिसने अपनी इन्द्रियों को काबू में कर रखा है, जो सरलतापूर्वक बर्ताव करता है और समस्त प्राणियों का हितैषी है, जिसको अतिथि प्रिय है, जो क्षमाशील है, जिसने धर्मपूर्वक धन का उपार्जन किया है—ऐसे गृहस्थ के लिए आश्रमों की क्या आवश्यकता है ?

✿ ✿ ✿

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

(ऋक् १/१६४/४६)

सत् ब्रह्म एक ही है, मेधावी लोग उस एक सत् तत्त्व को ही इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि आदि नामों से अभिहित करते हैं। सुन्दर पंख वाले तीव्रगामी गरुड़ भी वे ही हैं। उसी तत्त्व को यम, मातरिश्वा के नाम से भी कहते हैं। क्या वह तत्त्व (ब्रह्म) एक ही है या अनेक ? नहीं, वह एक ही है और उसी एक तत्त्व के ही ये अनेक नाम और रूप हैं।

✿ ✿ ✿

चित्रकर्म यथाऽनेकैरंगैरुन्मील्यते शनैः।
ब्राह्मण्यमपि तद्वत् स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकैः।।

(महर्षि अंगिरा)

तूलिका के बार-बार फेरने से शनैः-शनैः जैसे चित्र अनेक रंगों से निखर उठता है, वैसे ही विधिपूर्वक संस्कारों के अनुष्ठान से ब्राह्मणत्व का विकास होता है।

✿ ✿ ✿

संस्कृतस्य हि दान्तस्य नियतस्य यतात्मनः।
प्राप्तस्यानन्तरा सिद्धिरिहलोके परत्र च।।

(महाभारत)

जिसके वैदिक संस्कार विधिवत् सम्पन्न हुए हैं, जो नियमपूर्वक रहकर मन और इन्द्रियों पर विजय पा चुका है, उस विज्ञ पुरुष को इहलोक और परलोक में कहीं भी सिद्धि प्राप्त होते देर नहीं लगती।

✿ ✿ ✿

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 39 अंक 6	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम् मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः। तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्, कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	सितम्बर 2006

श्री रामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि !

श्री रामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि
श्री रामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि।
श्री रामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि,
श्री रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये।।

अर्थात्

मन से श्रीरामचन्द्र के चरणों का चिन्तन, वचन से श्री रामचरणों का गुणगान; सिर से श्री रामचरणों में नमन और अन्ततः उन्हीं चरणों की शरण लेता हूँ।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डा. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज 3
2. सम्पादकीय 14
3. भोग और योग – स्वामी इन्द्रानन्द उदासीन 'मौनी' 16
4. श्री गुरुदेव का स्पष्ट निर्देश – केशवदेव उपाध्याय, वाराणसी 21
5. अध्यात्म-सिद्धि का गणितीय सूत्र – डा० ऋषिराम शर्मा 25
6. वन्दे कृष्णम् जगद्गुरुम् – निर्मला चन्देल (उदयपुर) 31
7. योगदर्शन और गीता में साधना का महत्व – वेदव्रत द्विवेदी (उमापुर) 32
8. क्या होगा प्रभु, क्या होगा ? – जगदीश राय बंसल 'अधम', (गोहाना) 34
9. गुरुदेव के मार्गदर्शन की अपरिहार्यता – दृष्टिकेतु सिंह पुण्डीर 35
10. सच्ची सद्गुरु भक्ति – अंशुमान मालवीय 37
11. इक अर्ज मेरी तुमसे – राजेश कुमार सिंह, रोहुआ (बलिया) 38
12. असीम अनुकम्पा – प्रो० विनोद जौहरी 39

एक प्रति	: रु.	10.00
वार्षिक शुल्क	: रु.	110.00
द्विवार्षिक	: रु.	200.00
आजीवन	: रु.	825.00

❐ विशेष लेख

शक्ति प्राप्ति के दिव्य साधन

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने अपने पिछले लेखों में यह भली प्रकार से समझा दिया है कि शक्ति–विहीन व्यक्ति कुछ भी नहीं है। हमारे शास्त्रों का कथन है :–

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो"

अर्थात् बलहीन मनुष्य को आत्म पद की प्राप्ति स्वप्न में भी सम्भव नहीं है। जो प्राणी शक्तिहीन है वह लोक व परलोक के सुख को किसी प्रकार भी प्राप्त नहीं कर सकता। उसका जीवन केवल इस प्रकार का है जिस प्रकार से वर्षाकाल में अनेक प्रकार के कीट–पतंगें आदि जन्म लेकर मर जाया करते हैं। मनुष्य जब से जन्म ग्रहण करता है तब से उसके मन में शक्ति प्राप्ति की धुन सवार रहती है। किन्तु "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" के नियमानुसार साधन में प्रवृत्त मनुष्य अपनी मति के अनुसार होता है। इसलिए वह जिस प्रकार की साधना करता है उसी प्रकार की शक्ति का अनुभव कर अपने आपको आह्लादित कर लेता है; किन्तु उसका वह आह्लाद बहुत थोड़े समय के लिये होता है. जिस प्रकार से समुद्र की मछली को कहीं तपी हुई बालुका में डाल दिया जाय तो वह इस बालुका की गर्मी को पाकर तड़प जाया करती है और यदि उसको कोई छोटा–सा भी जलाशय मिल जाता है तो उसे पाकर उसको शान्ति मिलती है। किन्तु वह शान्ति उसके लिए अस्थाई है जब तक वह मछली अपने घर समुद्र को प्राप्त नहीं हो जायेगी तब तक उसका दुःख तड़पना किसी भी प्रकार से कम नहीं हो सकता। इसी प्रकार यह जीवात्मा परमात्मा का सनातन अंश है और जब तक यह उन्हीं को प्राप्त नहीं हो जाता तब तक छोटी–मोटी शक्तियों को पाकर के इसको शांति किस प्रकार से उपलब्ध हो सकती है ? और जिसको शांति ही नहीं मिली उसको सुख कहां से आयेगा। इसलिए योगियों ने अपने तप के आधार पर उच्चतम शक्ति प्राप्त करने के उपायों का अन्वेषण किया जिनको करते हुए वह कभी भी दीनता को प्राप्त नहीं होगा। हमारे शरीर में सभी प्रकार की शक्तियों की उत्पत्ति का केन्द्र मन है। मन को ज्योतियों की भी महा ज्योति कहा गया है और वेद मंत्रों में उसको शिव संकल्प वाला होने की प्रार्थना की गई है।

अर्थात् हमारा मन ज्यों जागता हुआ दूर–दूर भ्रमण करता है और सोता हुआ भी इसी

प्रकार क्रियाशील बना रहा करता है। उसमें शुभ संकल्पों का वास हो जिससे वह हमारे उत्थान का कारण बने, हमारे पूर्वजों का कथन है :–

मनएव मनुष्याणाम् कारणं बन्धमोक्षयोः।

अर्थात् बन्ध और मुक्ति का कारण मन है, इसलिए सर्व प्रथम मन की बागडोर को रोक कर शक्ति संचय करने के लिये उसका संयम में ले आना बहुत ही आवश्यक है। भगवान् पतंजलि देव ने 'योग–दर्शन' में अष्टांग योग का वर्णन किया, वह सारे–के–सारे अंग यद्यपि मन पर नियन्त्रण करने के लिये अचूक साधन हैं, किन्तु फिर भी सब प्रकार की साधना करते हुए अष्टांग योग के अन्दर धारणा, ध्यान और समाधि मनोनिग्रह करने के तीन प्रमुख साधनों का उल्लेख किया गया है। जब तक मन किसी धारणा के द्वारा अन्तर्मुख नहीं होता तब तक इसके अन्दर शक्तियों का उदय नहीं हो सकता। किसी महावृक्ष को छेदन करने के लिये पहले इस प्रकार के शस्त्र की जरूरत है जो तेजधार वाले हों और उसे काट सकें। इसलिये परम श्रेय लाभ करने के लिये और अपने अन्दर दिव्य शक्तियों को संग्रहीत करने के लिये प्रथम मन को ही बना लेना बहुत आवश्यक है। उसकी पहली साधना धारणा से आरम्भ होती है।

धारणा

धारणा का अभ्यासी मनुष्य बाह्य जगत में प्रवेश करने की योग्यता को धारणा करता है। धारणा क्या है ? इसके विषय में भगवान् पतंजलि देव अपने सूत्र में निर्देश इस प्रकार करते हैं :–

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

अर्थात् किसी लक्ष्य स्थान में चित्त को इकट्ठा करना धारणा कहलाती है। यह धारणा ही योग का सर्व प्रथम सोपान है। यहां से ही मनुष्य का सर्वार्थक मन एकाग्र होना आरम्भ होता है। धारणा कहाँ करनी चाहिये इस विषय में शास्त्रों के अनेक मत हैं किन्तु योग दर्शन पर भाष्य लिखते हुये धारणा स्थान निम्नांकित बतलाये हैं :–

नाभिचक्रे, हृदय पुण्डरीके, मूर्ध्नि ज्योतिषि, नासिकाऽग्रे, जिह्वाऽग्रे, इत्येवमादिषु देशेषु, बाह्ये वा विषये, चित्तस्य वृत्ति मात्रेण बन्ध इति धारणा।

अर्थात् नाभिचक्र, हृदय कमल, मूर्ध्न ज्योति, नासिका अग्र, जिह्वा अग्र इत्यादि स्थानों पर चित्त को वृत्ति मात्र से एकाग्र करना धारणा कहलाती है। वृत्ति मात्र कहने का अभिप्राय यह है कि इनको हम अपने मन की वृत्ति के कल्पनात्मक रूप से चिन्तन करें, जिस प्रकार से आंख रूप को प्रत्यक्ष देख लेती है और मन उस रूप की भावना किया करता है। देखे–सुने हुये विषय को मन को भावना रूप में चिन्तन करना ही वृत्ति–बन्ध

है। इसका अभिप्राय इस प्रकार समझ लेना चाहिये, जैसे हमने हृदय कमल में भगवान् शिव के स्वरूप पर धारणा करना आरम्भ की एवं कल्पना से उनके स्वरूप को हम हृदय में बैठा हुआ देखने लगें। यही हृदय कमल की धारणा है। बार-बार कल्पना से भगवान् शिव, श्री राम, श्रीकृष्ण, श्री विष्णु या अन्य किसी भी इष्टदेव के स्वरूप का हृदय कमल में चिन्तन करना यह हृतपुण्डरीक में होने वाली धारणा है इसी प्रकार से मूर्ध्दा ज्योति, नासिका अग्र, जिह्वाग्र, नाभि चक्र आदि में धारणा की जाती है। धारणा करने वाले व्यक्ति को चाहिये वह फल की इच्छा को छोड़ करके कर्म को करता रहे। किसी भी काम में मनुष्य जल्दी परिणाम को प्राप्त नहीं कर सकता। भगवान् पतंजलिदेव का आदेश है :-

स तु दीर्घ कालनैरतर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः।

अर्थात् किसी भी अभ्यास को हम करना शुरू करें तो उसके परिणाम की प्रतीक्षा के लिये उसका वर्षों तक लगातार करते रहना बहुत आवश्यक है। यह नहीं चाहिये कि हम एक-दो दिन करके ही उसके परिणाम पर हावी हो जायें। काफी लम्बे समय तक उस अभ्यास को करना चाहिये और लगातार करना चाहिये अर्थात् इस नियम में कोई विघ्न नहीं आये। आज कर लिया कल फिर छूट गया, फिर दो-चार रोज कर फिर कुछ समय के लिये छूट गया। इस प्रकार का अभ्यास सफलता के उच्चतम स्तर पर नहीं ले जा सकता। उसके साथ-साथ एक बात और परमावश्यक है कि हम श्री गुरुदेव के वचन पर विश्वास करें उस अभ्यास को करें जिससे हमारी श्रद्धा परिपूर्ण रूपेण हो, हमने किसी मन्त्र का जाप शुरू किया और उसमें हमारी आस्था न हुई तो उसका भी परिणाम जल्दी श्रेयस्कर नहीं हो सकता। वैसे शास्त्रीय नियम के अनुसार "अकरणात् कर्णम श्रेयः" न करने से कुछ करना ही अच्छा है, इस बात को विचार में रखते हुये जो कुछ भी किया जाय, कुछ-न-कुछ भले के लिये तो होता ही है किन्तु यदि हम उसके उत्तम और अन्तिम निष्कर्ष को देखना चाहते हैं तो उपरोक्त तीनों नियमों का पालन करना हमारे लिये बहुत ही आवश्यक है। इसलिये धारणा को भी परिपक्व करने के लिये हमें कम-से-कम तीन साल तक एक विषय पर ही परिपक्व मन लगाना चाहिये। तीन साल तक यदि मन्दाधिकारी भी उपरोक्त सूत्र के अनुसार धारणा का अभ्यास करेगा तो उसका भी मनोबल अवश्य बढ़ेगा ही बढ़ेगा। धारणा के अभ्यास से मन में विचार करने की उच्च स्तर की योग्यता प्रगट हो जाती है और वह एकाग्रता की ओर चलने लगता है। भगवान् पतंजलि देव ने योग दर्शन में कहा है :-

धारणा तु योग्यता मनसः।

अर्थात् धारणा करने पर मन की योग्यता बढ़ती है। मन में बल का विकास होता है और वह सब कुछ करने की ताकत वाला बन जाता है। जो व्यक्ति दो या तीन साल तक

लगातार प्रातः व सायंकाल ३–३ घण्टे अपने ध्येय विषय की धारणा करके उसको वृत्ति वृन्द से एकाग्रित करना चाहता है उसका ऐसा अनवरत अभ्यास करने पर अवश्य ही वह विषय उसके मन में प्रगट होने लगता है। मन को एकाग्र करने के कुछ इस प्रकार के नियम है कि जिनके पालन करने से हर मनुष्य का मन एकाग्र हो ही जाता है। यदि वह किसी अच्छे कण्ट्रोलर अर्थात् अच्छे नियंत्रक गुरुदेव की आज्ञा में बँधकर अपने अभ्यास को नियमानुसार करता है। इस प्रकार से लगातार किया हुआ यह धारणा अभ्यास स्वतः ही ध्यान के रूप में बदल जाया करता है।

ध्यान

भगवान् पतंजलि देव ने ध्यान की परिभाषा बतलाते हुए अपने योग दर्शन में यह सूत्र कहा है :–

तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्।

अर्थात् उस ध्येय विषय में चित्त का सदृश प्रवाह अर्थात् लगातार लगे रहना किसी और विषय का चिन्तन बिल्कुल नहीं आना ही ध्यान कहलाता है। इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुये भगवान् व्यासदेव लिखते हैं :–

तस्मिन् देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानता=सदृश प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम्।

अर्थात् ध्येयालम्बनीभूत विषय का अनवरत चिन्तन, जिसमें दूसरे चिन्तन का स्थान भी न हो एवं वृत्ति तेलधारा के मानिन्द एक स्तर की चले, उसी का नाम ध्यान कहलाता है। ध्यान उस विषय का नाम है जिसमें चित्त के अन्दर एकाग्रता परिणाम का पूर्ण उदय हो जाता है। अभी तक हमारा चित्त सर्वार्थक था अर्थात् उसको इन्द्रियाँ अपने–अपने विषयों को दिखलाती थीं और उनमें ही बटा हुआ रहा करता था, कर्णेन्द्रियों ने किसी मधुर आवाज को ग्रहण किया तो चित्त चट उसकी ओर भाग गया। रसनेन्द्रिय जिन्होंने किसी प्रकार के रस का आस्वाद किया तो चित्त उसमें ही भटक गया। नेत्रेन्द्रियों ने किसी रूप को दिखाया, मन रूपदर्शन में लग गया। त्वगेन्द्रिय ने स्पर्श ज्ञान की और मन को खींचा उस ही की ओर लग गया। घ्राणेन्द्रिय ने किसी प्रकार की दुर्गन्ध को ग्रहण किया तो मन उसको ही ग्रहण करने मे लग गया, इस प्रकार से हमारा मन भटकता रहता है और वह सर्वार्थक रहता है किन्तु जब योगी ने मन को इकट्ठा करके धारणा की और लगा करके वृत्तिवृन्द के द्वारा एक विषयक बनाने की चेष्टा की तो उसके अन्दर कुछ एकाग्रता के धर्म पैदा होने लगे और इस धारणा के अनवरत अभ्यास करते रहने पर ज्यों–ज्यों मन की अपनी ताकत बढ़ी त्यों ही उसके अन्दर एकाग्रता परिणाम आ गया और वही सर्वार्थक मन ध्यान के रूप

में बदल गया। यहां से ही योगी की अन्तर्मुखी वृत्ति का आरम्भ हो जाता है और मोक्ष–मार्ग की ओर बढ़ने लगता है, कठोपनिषद् में नचिकेता को उपदेश देते हुये भगवान् यमराज ने यह स्पष्ट कहा है कि–मनुष्य अन्तर्मुखी वृत्ति के द्वारा ही परम श्रेय को लाभ कर सकता है।

पराञ्चिखानि व्यतृणत्सव यम्भूस्तस्मात्पराङ्: पश्यति नान्तरात्मन्।। कश्चिद्धरिः प्रत्यगात्मान मैक्षदावृत्तिचक्षुरमृतत्वमिच्छन।।

अर्थात् परमात्मा ने सारी इन्द्रियों को बाहर की ओर देखने वाला बनाया है। इसलिये वह परान्त्पश्यन का काम करती है किन्तु संसार में कोई–कोई धीर पुरुष इस प्रकार के होते हैं जो अपने बाहर के इन्द्रिय–व्यापार को बन्द करके उस प्रत्यगात्मा को देख पाते हैं। उस नित्य चेतन धन परम प्रभो को जानने के लिये बहुत आवश्यक है कि हम ध्यान योग के अभ्यासी बन जाय। हमें शास्त्र स्पष्ट आज्ञा देता है :–

नचक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्णभावा,
ज्ञान प्रसादेन विशुद्धसत्वस्ततस्तु तं पश्यन्ते निष्कलं ध्यायमानः।

अर्थात् वह सच्चिदानन्दघन न चक्षुओं से देखा जा सकता है न दूसरी इन्द्रियाँ प्राप्त कर सकती हैं। केवल मात्र वह ज्ञानानुभूति से ही निरन्तर ध्यान करते हुये मुनि लोग उसके तत्व को जान सकते हैं। अतः ध्यान योग के द्वारा ही योगी अन्तरमुखता को प्राप्त होकर अपने ध्येय को प्राप्त कर लेते हैं और यहां आकर उसका मनोबल और भी अधिकाधिक विकसित हो जाता है। हमारे पूर्वाचार्यों का कथन है कि :–

यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन।।

अर्थात् पाप का फैला हुआ पहाड़ भी हो तो वह ध्यान योग के द्वारा नष्ट हो जाता है उसके नष्ट करने का और कोई उपाय नहीं है। इसका कारण केवल मात्र यह है, ध्यान मन में पूर्ण सतोगुण उदय होने पर ही स्थिर रह पाता है। जब तक मन के अन्दर रज और तम की वृत्तियाँ अग्रणी रहती है तब तक मन अन्तरमुखता प्राप्त हो जाने के बाद रज और तम की वृत्तियाँ दिन–दिन क्षीणता को प्राप्त होने लगती है और उत्तरोत्तर ज्ञान और तेज का विकास होने लगता है। इसलिये ऐसा मन विवेकख्याति की ओर बढ़ता चला जाता है और उसके पाप इस प्रकार से नष्ट हो जाया करते हैं जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अन्धकार हट जाता है। अस्तु, क्योंकि मन ध्यान में अन्तरमुखी होता है वह बाह्य जगत से नाता तोड़कर अन्तराल में होने वाले विविध प्रकार के सत्व के प्रधान दृश्यों को देखता है और ज्यों–ज्यों अन्तरजगत के दृश्य उसके सामने आते है त्यों–त्यों उसका बाह्य जगत से एक प्रकार का नाता टूट–सा जाता है और पूर्ण वैराग्य का उदय अपने आप ही होने लगता

है, यदि ऐसे समय में कोई तत्ववेत्ता गुरुदेव नियंत्रक हो अपने शिष्य को बाह्य जगत से हठात् रोक करके अंतरमुखी वृत्ति के द्वारा विवेक ख्याति की ओर खींच ले जाये। किन्तु यहां पर उसी नियम को याद रखना चाहिए जो धारणा के वर्णन में पहले बतलाया जा चुका है। यद्यपि धारणा से बढ़ी हुई योग्यता के अनुसार मन ध्यान–परायण हो गया किन्तु फिर भी यदि यह अपनी इस अमूल्य निधि को सम्भाल कर न रख सका तो सम्भव है बाहर के वासनामय दृश्यों की ओर मन को लगा देने पर खो बैठे। यदि अपने इस घर को साधक लापरवाही से खो देता है तो उसका अभ्योत्थान बहुत ही कठिन हो जाता है। क्योंकि हमारे शास्त्र का कथन है :–

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषी मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुर मृतास्ते भवन्ति।।

अर्थात् उस प्रत्यगात्मा को आंखों से नहीं देखा जा सकता। हृदय में मनन करने से मनन करने वाली बुद्धि के ही द्वारा प्राप्त किया जा सकता है और जो पा लेता है वह अंदर हो जाया करता है। जो इसको पाने की इच्छा करता है वह तीव्रतम तपश्चर्या करे। पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे। इस लोक में होने वाले और परलोक में होने वाले सभी प्रकार के भोगों का त्याग करे तभी आगे बढ़ सकता है। जो लोग किसी विशेष अन्य प्रारब्ध के बल से गुरुदेव की अनुकम्पा को पाकर के इस ध्यान निधि को पा लेता है वह अपनी इस कमाई को कायम रखने के लिए पूर्णतक का आचरण करे, किसी प्रकार का अहंकार न करे, क्रोध और राग द्वेष आदि को त्याग दे, तभी यह ध्यान की सम्पत्ति मन में कायम रहेगी और उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त होती रहेगी। ज्यों–ज्यों योगी ध्यान योग का अभ्यास करेगा त्यों–त्यों उसके स्वभाव से ही संकल्प सत्य होने लगेंगे, इस प्रकार से वह अपने संकल्पों में सत्य को अनुभव करेगा। ऐसे ध्यान योगी के विषय में योगाचार्यों ने कहा है :–

यम् यम् चिन्तयन्ते कामं तम् तम् प्राप्नोति निश्चितम्।

अर्थात् जिन–जिन कामनाओं की वह चिन्ता करता है वह उसको कुदरती ही प्राप्त होने लगती है। ध्यान योग को भी भगवान पतंजलि देव ने सम्प्रज्ञात समाधि कहा है। सम्प्रज्ञात शब्द का अर्थ है जिसमें कुछ भी अनुभव होते रहें। सम्प्रज्ञात योग का अभ्यासी योगी, अतल, वितल, तलातल, रसातल, पाताल और भूर्भुवस्व महःजन, तपः सत्यम् आदि ऊपर के लोक इनका पूर्णरूपेण साक्षात्कार कर लेता है। ज्यों–ज्यों ध्यान योग की स्थिति अष्टांग योग के अभ्यास से साधक की निर्मल होती चली जाती है, त्यों–त्यों उसका विवेक ज्ञान निर्मल होता रहता है। योगदर्शन में भगवान् पतंजलि देव ने अपने मुखारविन्दु से यही भाव स्पष्ट रूप से कहे भी हैं।

योगांङानुष्ठानाद शुद्धिक्षये ज्ञान-दीप्तिरा विवेक ख्यातेः।

अर्थात् यौगांगों का अनुष्ठान करने से जब तक पूर्ण विवेक ज्ञान नहीं प्राप्त होता तब तक उत्तरोत्तर ज्ञान–दीप्ति होती रहती है। ज्योंही योगी का सत्य इतना निर्मल हो जाता है कि वह रज व तम को बिल्कुल दबा–सा देता है तो उसको स्वतः ही सत्य संकल्पता प्राप्त हो जाती है। वह जो–जो संकल्पन करता है वह सभी अनायास ही सफल होने लगते हैं। यहां पहुँच करके ही मनुष्य को ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होती है। योग–दर्शन में बतलाया है :–

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा

इस सूत्र का भाष्य करते हुए भगवान् व्यासदेवजी लिखते हैं :–

तस्मिन् समाहितचित्तस्य या प्रज्ञा जायते तस्या ऋतम्भरेति संज्ञा भवति, अन्वर्था च सा सत्यमेव बिभर्ति, न तत्र विपर्यासगन्धोऽप्यस्तीति तथा चोक्तम्।

अर्थात् इस सम्प्रज्ञात समाधि में चित्त के समाहित होने पर स्वतः ही ऋतम्भरा प्रज्ञा प्रगट हो जाती है और **"ऋतः सत्य मेव बिभर्ति"** वह ऋत अर्थात् सत्य को ही धारण करती है। यहां पर मिथ्या ज्ञान का लवलेश भी नहीं रहता। वह ऋतम्भरा प्रज्ञा सुतानमान संस्कारों से और ही प्रकार की होती है क्योंकि वह विशेषार्थ को धारण करती है। इस प्रज्ञा के पैदा हो जाने पर योगी सत्य संकल्प हो जाता है। अर्थात् अभ्यास करने पर और श्री गुरुदेव की अनुकम्पा को प्राप्त करके ज्यों–ज्यों योगी का मन ध्यान योग के अभ्यास में अविच्छिन्न गति से बराबर चलने लगता है, त्यों–त्यों ही उसके मन को समाधि के धर्म प्रगट होने लगते हैं।

समाधि

ध्यान और समाधि में अन्तर केवल मात्र इतना ही है कि ध्यान में योगी त्रिक ज्ञान की स्थिति के अनुसार अपने आपको ध्येय से अलग देखता है और ध्येय को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहता है। किन्तु इसका प्रयत्न व्यर्थ नहीं होता। मनुष्य को घबड़ाना नहीं चाहिये पहिले नियम को सामने रखना चाहिये।

स तु दीर्घ कालनैरन्तर्य सत्कारासेविता दृढ़ भूमिः।

अर्थात् लम्बे समय तक लगातार और आदरपूर्वक किया हुआ ही अभ्यास फल का दाता होता है। इसलिये योगी धैर्यपूर्वक ज्यों–ज्यों अपने ध्यानाभ्यास को बढ़ाता है तभी वह समाधि का अधिकारी बनता है और उसका मन त्रिक ज्ञान को छोड़कर ध्येयाकार में परिवर्तित होने लगता है। ध्यानावस्था में साधक ध्याता था और अपने इष्टदेव का ध्यान करता था। उस अवस्था में ध्याता, ध्यान और ध्येय, ये तीनों वस्तुऐं अलग–अलग भासित हो रही थीं; किन्तु समाधि प्राप्त होने पर भगवान् पतंजलिदेव बतलाते हैं कि–

तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधि :।

अर्थात् जिसमें अर्थमात्र ही निर्भासित होता रहे और अपना स्वरूप भी समाप्त प्रायः हो जाय। साधक की अपनी वृत्ति तदाकार वृत्ति होकर ध्येयाकार में पूर्णरूपेण परिपक्व हो जाय, उसी स्थिति का नाम समाधि है। उपनिषद् हमें बतलाते हैं :–

समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनः।

अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा की समतावस्था को समाधि कहते हैं जिसमें मैं ईश्वर से भिन्न हूँ ऐसी वृत्ति समाप्त होकर, मैं स्वयं वही हूँ ऐसी वृत्ति ही कायम रहने लगे और योगी अपने आपको प्राणीमात्र के अन्तःकरण के अन्दर देखने लगे तो समझ लेना चाहिये कि उसकी योग्यता है। भगवान् जगदात्मा श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने मुखारविन्द से श्रीमद् भगवद् में गीता के अध्याय ६ में स्वयं कहा है :–

सर्वभूतस्थ मात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र सम दर्शनः।।

अर्थात् प्राणीमात्र में अपने आपको और प्राणीमात्र को अपने अन्दर केवल मात्र उक्त योगी ही देखता है, अन्य नहीं। यह स्थिति योगी को समाधि में ही उपलब्ध हो पाती है। जिस योगी का मन समाधिवान् बन जाता है और उसकी समाधि यथार्थ रूप को धारण कर लेती है तो स्वतः ही संयम होने लगता है। संयम की परिभाषा भगवान् पतंजलिदेव इस प्रकार लिखते हैं :–

संयम

त्रयमेकत्र संयमः।

इस सूत्र पर भगवान् व्यासदेवजी भाष्य लिखते हैं :–

एक विषयाणि त्रीणि साधनानि संयम इत्युच्यते तदस्य त्र यस्य तान्त्रिकी परिभाषा संयम इति।

अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि तीनों एक विषयक होती रहे, तो ही मनुष्य संयम को प्राप्त होता है। कहने का अभिप्राय इस प्रकार समझ लेना चाहिये कि साधक जिस समय धारणा का अभ्यास करे, वह धारणा केवल एक ध्येय का ही अवलम्ब करने वाली हो किसी भी प्रकार से प्रत्यान्तर प्रगट न हो। धारणाकाल में जिस ध्येय का चिन्तन किया जाय उस चिन्तन स्थिति में कोई दूसरा ध्येय कल्पना से भी सामने न आये और इसी प्रकार से ध्यान काल में वृत्ति एकाग्र होने पर किसी भी प्रकार से चित्त किसी दूसरे ज्ञान को बिल्कुल छुए तक नहीं और वही धारणा–काल में चिन्तन किया हुआ, ध्येय उसके सामने प्रगट हो जाय तो समझ लेना चाहिये कि उसके ध्यान की भूमिका पर विजय प्राप्त कर ली है किन्तु इतना

हो जाने के बाद योगी को प्रमादन्वित न होना चाहिये जिससे कि वह अपने मन में समझ बैठे कि मैंने पूर्णता को पा लिया है। आगे कुछ भी प्राप्तव्यावशेष नहीं है। ऐसी भावना बन जाने पर योगी को अन्तराय घेर लेंगे और वह समाधि तक नहीं पहुँच पायेगा। जब इस प्रकार के आलस्य व प्रमाद से बचकर योगी अपने ध्येय का ही अवलम्ब लेकर आगे बढ़ने का प्रयत्न करेगा तो उसके ध्यान का नाग भी कोई दूसरा ज्ञानास्पर्श नहीं करेगा और शनैः–शनैः उसका मन समाधि रूप में परिवर्तित हो जायेगा। समाधि हो जाने पर भी योगी की वृत्ति किसी और विषय में तदाकार न हो तब वह समाधि पर पूर्णरूपेण विजय प्राप्त कर लेगा और उसको संयम सिद्ध हो जायेगा। संयम सिद्ध हो जाने के बाद उस संयमित मन को योगी जहाँ–जहाँ लगायेगा वहाँ–वहाँ की शक्तियों को अवश्य प्राप्त कर लेगा। इसी सिद्धांत को लेकर समाधि पर विजय प्राप्त करने वाला योगी सिद्धि–शक्तियों का भण्डार बन जाता है। वह जिस प्रकार की जिस ताकत को प्राप्त करना चाहता है, उसको वह ताकत बराबर उपलब्ध होती चली जाती है और ज्यों–ज्यों वह योगी संयम पर विजय प्राप्त करता है त्यों–त्यों उसके सामने समाधि प्रज्ञा स्पष्ट रूप से प्रगट होती चली जाती है। भगवान् पतंजलि देव कहते हैं :–

तज्जयात् प्रज्ञाऽऽलोकः।

अर्थात् संयम सिद्ध हो जाने पर योगी को प्रज्ञा लोक हो जाता है। श्री व्यासदेव भाष्य में लिखते हैं :–

तस्य संयमस्य जयात्समाधि प्रज्ञाया भवत्या लोकः यथा यथा संयमः स्थिरपदो भवति तथा तथा समाधिप्रज्ञा विशारदी भवति।

अर्थात् जैसे–जैसे संयम स्थिर पद को प्राप्त होता है वैसे–वैसे ही समाधि प्रज्ञा निर्मल होती चली जाती है। इस प्रकार योगी संयम सिद्ध हो जाता है और संयम सिद्ध हो जाने पर –

तस्य भूमिषु विनियोगः।

अर्थात् संयम सिद्ध हो जाने के बाद उस संयम को भूमिकाओं में विनियोग किया जा सकता है। जैसा कि हमने पहिले बता दिया है, संयमी मन को जहां लगायेगा वह वहां को अर्थ ज्ञान को प्राप्त कर लेगा। योगी को चाहिये पहले–पहल संयम का विनियोग साधारण भूमियों में ही करे, जैसे परिधि संज्ञा रूपदर्शन, गन्ध साक्षात्कार, रसावलोकन आदि के हर स्वरूप को जानने के लिये तालु में संयम करे, दिव्य शब्द सुनने के लिए जिह्वा मूल में संयम करे और रसास्वादन के लिये जिह्वा के अग्रभाग में संयम करे। दिव्य घ्राण ग्रहण करने के लिये नासिकाग्र भाग में संयम करे। यह योगी के संयमित मन के पहले विषय हैं। जिसमें संयम करने से वह मोटे–मोटे ज्ञान प्राप्त कर लेगा। कदाचित् कोई योगी यकायक

आत्म साक्षात्कार के लिये संयम करता है तो वह विफल हो सकता है। जिस प्रकार से पहली, दूसरी श्रेणियों में अध्ययन करने वाला व्यक्ति एम० ए० के कोर्स को नहीं पढ़ सकता। पढ़ने वाला और पढ़ाने वाला दोनों का प्रयास व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार छोटी भूमिकाओं के संयम के बिना जो योगी ऊँची भूमिकाओं में संयम करने का प्रयत्न करता है वह हताश होकर बैठ जाया करता है, उसके सामने इतनी निराशा हो जाती है कि वह कभी फिर संयम की ओर चलने का प्रयत्न नहीं करता। हां एक बात अवश्य है उसको भगवान् व्यास देव ने भाष्य में प्रगट कर दिया है :-

ईश्वर प्रसादाज्जितोत्तर भूमिकस्य च नाधर भूमिषु पर वित्तज्ञानादिषु संयमा युक्तः कस्मात् तदर्थस्यान्यत एवावगेतत्वाद।

अर्थात् जिसने ईश्वर निग्रह से आगे की भूमिकाओं को जीत लिया है उसको फिर निम्न श्रेणियों में संयम करने की आवश्यकता नहीं। कई-कई इस प्रकार के बुद्धिमान छात्र होते हैं जो स्कूलों में बाकायदा कोर्स को न भी करके हाईस्कूल, इण्टर, बी० ए० आदि की परीक्षायें सीधे दे डालते हैं। इस प्रकार के छात्रों को अपने पुरुषार्थ से नीचे की परीक्षायें देने की आवश्यकता नहीं रहती। इसी प्रकार से जो लोग ईश्वर की परम कृपा से जितोत्र भूमि हो जाते हैं उनको फिर नीची श्रेणियों के संयम करने की आवश्यकता नहीं रहती। उनका मन संयमित हो चुका है उसको वह जहाँ लगायेगा वहां का फलभागी हो ही जायेगा। इसलिये भगवान् पतंजलि देव ने संयमित मन वाले योगी के लिये बहुत से विषय लिखे हैं जिनमें साधारण अभ्यास के बाद योगी संयम कर सकता है और वहां-वहां के ज्ञान को प्राप्त करके एक विशेष शक्ति को अपने अन्दर संग्रहीत कर लेता है। थोड़ी देर के लिये योगी परिचित ज्ञान को प्राप्त करना चाहता है। भगवान् पतंजलि देव बतलाते हैं :-

प्रत्ययस्य परिचित्तज्ञानम्।

अर्थात् दूसरे के चित्त में संयम करने से योगी को उसका ज्ञान हो जाता है किन्तु वह चित्त किस रंग में रंगा हुआ है यह ज्ञान योगी को तभी होगा जब वह यह जानने की इच्छा करेगा कि दूसरे का चित्त किस विषय का अवलम्ब कर रहा है। पहले पहल परिचित साक्षात्कार के लिये उस व्यक्ति के हावभाव को देखकर उसके चित्त को जानने की इच्छा करता है, और संयम करता है। संयम के अतिरिक्त सर्वसाधारण व्यक्ति भी इंगितों के चित्त के स्वरूप को कुछ-कुछ अनुमान कर लिया करते हैं। नीति शास्त्र का वचन है :-

आकारै रेगिन्तै गत्या चेष्टया भाषणेन च।
नेत्र वक्र विकारैश्च ज्ञायते अन्तर्गतम् मनः।।

अर्थात् आकृति को देखकर, इशारों को देखकर, चलने की गति को देखकर, शरीर में हरकतों को देखकर, आंख और मुख के विकारों को देखकर भीतर का मन जाना जाता

है। एक मनुष्य ने देखा कोई व्यक्ति बड़ी प्रसन्न मुद्रा में आ रहा है उसको देखकर सर्वसाधारण मनुष्य अवश्य कह ही देगा क्यों जी आज तो आप बड़े खुश मालूम पड़ते है ? क्या मिल गया हमें भी तो बता दीजिये और उसका वह अनुमान गलत नहीं होता, कदाचित् वह व्यक्ति नहीं बतलाये तो योगी उसके प्रसन्न मुद्रा वाले चित्त को ही अपने संयम का विषय बनायेगा और संयम करने पर वह यह अवश्य जान ही लेगा कि हां अवश्य यह प्रसन्न है ही। किन्तु यह प्रसन्न क्या है कि कारण से है यह जानने का विषय योगी ने अपने संयम को नहीं बनाया है। अभी तक तो योगी ने अपने संयम का विषय केवल इतना ही बनाया था कि वह व्यक्ति जो आकारा–इंगित और गति आदि से प्रसन्न कोटि में पड़ता है वह वस्तु तो प्रसन्न है ही या नहीं उतना ही उसने जान लिया, वह व्यक्ति प्रसन्न अवश्य है। अब यह क्यों प्रसन्न है और कैसे प्रसन्न है इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिये योगी को दूसरे के चित्त के विषय के अन्दर संयम करना पड़ेगा। तब वह यह जान पायेगा कि इसके प्रसन्न होने के ये कारण हैं। यहाँ पर चित्त ज्ञानादि योगी के संयम के मोटे विषय हैं। उसके बाद वह जहां–जहां संयम करेगा, उस विषय को अवश्य–अवश्य जान लेगा। यही एक उपाय है जिसको प्राप्त करके मनुष्य ज्ञान–विज्ञान–तृप्तात्मा हो जाता है। वह प्रकृति के जिन–जिन विश्लेषणों को समझना चाहता है समझ लेता है। वह तत्वों के परिणाम को जान लेता है। उसके अन्दर इस संयम के आधार पर यह ताकत आ जाती है कि यदि वह चाहे अपने शरीर को बालरूप बनाये रखे, यदि वह चाहे युवा बनाकर रहे, यदि वह चाहे तो अपने आपको अति वृद्ध दिखलाये। आकाश गमन, परकाय प्रवेश, लोकोत्तर ज्ञान–यह सभी संयम सिद्ध योगी के लिये साधारण योग विद्या को "यस्मिन् ज्ञाते सदमिदं ज्ञानं भवतिः।" ऐसा कहा है अर्थात् जिसके जान लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है। वह हमारी योग विद्या है। इस लेख में हमने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि योगी अपने अन्दर शक्ति संचारित इस उपाय से कर सकता है। योगी के पास संयम ही एक इस प्रकार की निधि है कि जिसको पाकर वह लोग आकाश व पाताल को जानते हैं एक भूत–भविष्य के ज्ञाता है और कर्तुमकर्त्तुं के ताकत वाले हैं। सर्वसाधारण को चाहिये कि योग के पवित्र मार्ग को ग्रहण करते हुए वह अपने आपको सशक्त बनाये एवं जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहें। वह अपने आपको इस पवित्र उन्नति के पथ पर बढ़ाने का प्रयत्न करेगा तो सर्वशक्तिमान् प्रभुजी की शक्ति उसकी अवश्य सहायक होगी और वह अपने चरम लक्ष्य को पायेगा।

* * *

• सम्पादकीय

आने वाले दुःख को दूर किया जा सकता है !

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

भारतीय मनीषियों ने अनादिकाल से ही दुःख के अस्तित्व को माना है तथा इसके परिहार के लिये उपाय ढूँढा है। गीता में भगवान् स्वयं अपने मुखारविन्द से इस संसार को **'दुखालयमशाश्वतम्'** कहकर इसके विनाशी एवं दुःखमय स्वरूप को बतलाते हैं। योग साधना का भी एक ही लक्ष्य है वह है त्रिविध ताप की आत्यन्तिक निवृत्ति। जीवन अज्ञानता के कारण जन्मजन्मान्तर से दुःख भोगता चला आ रहा है। मानव जन्म पाकर दुःखों से निवृत्ति की संभावना बनती है। अज्ञान ही सभी दुःखों का मूल कारण है, ऐसा सभी दार्शनिकों का मत है। जो दुःख संस्कारवश भोगने में आ गये है वह तो भोग ही लिये गये हैं किन्तु अनागत अर्थात् आने वाला जो दुःख है उसका परिहार किया जाना चाहिये। पातञ्जल दर्शन में दुःख को 'क्लेश' शब्द से अभिहित किया गया है। दुःख का मूल कहाँ है ? इसका स्वरूप क्या है, इसे कैसे दूर किया जा सकता है आदि आदि प्रश्नों का समाधान योग दर्शन में दिया गया है। **'हेयम् दुखमनागतम्'** सूत्र कहकर यह बताया गया है कि आगे आने वाले दुःख को दूर कर देना चाहिये।

दुःख का मूल कारण क्या है ? भगवान् पतञ्जलि जी इसके उत्तर में एक सूत्र अवतरित करते हैं–**'दृष्टृदृश्ययोः संयोगी हेयहेतुः''** द्रष्टा और दृश्य का संयोग हेयहेतु है–दुःख का मूल कारण है। इस संयोग का कारण क्या है ? इसके उत्तर में कहा गया है–**'तस्य हेतुरविद्या'** अर्थात् इस संयोग का कारण अविद्या है जो कि पञ्च क्लेशों की जननी है। अविद्या से ही अस्मिता, राग–द्वेष और अभिनिवेश नाम के क्लेश उत्पन्न होते हैं। विवेक ख्याति के उदय होने पर ही अविद्या का नाश हो पाता है। अविद्या के नाश से ही प्रकृति–पुरुष सम्बन्ध का नाश होता है जिसे 'हान' कहा गया है। इसी से आगे कैवल्य की प्राप्ति होती है। इसलिये सूत्र दिया है– **''तदभावात् संयोगाभावो हानं तद् दृशेः कैवल्यम्''** अविद्या के विरोधी यथार्थ ज्ञान से संयोग का अभाव अथवा 'हान' हो जाता है। वही द्रष्टा का कैवल्य अर्थात् कैवली भाव है। इस 'हान' की प्राप्ति का उपाय क्या है ? सूत्रकार ने इसका उत्तर देते हुये कहा है–

'विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः''

शुद्ध व संशय–विपर्ययरहित विवेकख्याति ही 'हान' का उपाय है। विवेक अर्थात् द्रष्टा और दृश्य के भिन्नता का ज्ञान होना। इस प्रकार का ज्ञान श्रुत अथवा पठित ज्ञान से

सर्वथा भिन्न होता है। यह अनुमान ज्ञान भी नहीं है। समाधि के निरन्तर अभ्यास से अस्मितानुगत समाधि की परिपक्वावस्था में ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय होता है। क्योंकि इसमें राजस–तामस का मिश्रण बिल्कुल नहीं होता है इसलिये इस प्रकार का ज्ञान 'अपरोक्ष' ज्ञान कहलाता है जो पूर्णतया सत्य पर आधारित होता है। इसमें संशय का लवलेश भी नहीं होता है। समाधि अभ्यास की प्रक्रिया जड़–चेतन को पृथक् करने की प्रक्रिया है। जिस प्रकार गेहूँ को सूप की सहायता से पत्थर मिट्टी अथवा भूसा आदि से अलग कर दिया जाता है इसी प्रकार से जड़–चेतन का यह संयोग (अलग) दूर कर दिया जाता है अथवा दूध और पानी के मिश्रण को अलग–अलग कर दिया जाता है यही कार्य समाधि में पुरुष और प्रकृति के भेद के ज्ञान द्वारा होता है।

ऋतम्भरा अथवा विवेक ख्याति के आ जाने पर योगी सत्य संकल्प या सिद्ध संकल्प हो जाता है। संशय या मिथ्या ज्ञान का लवलेश भी ऐसी स्थिति में नहीं रहा करता है। योगी सत्य द्रष्टा हो जाता है। संयमसिद्धि के बल से ऐसा कोई संसार का ज्ञान अज्ञेय नहीं रहता जिसका साक्षात्कार उसे न हो सके। ऐसी स्थिति में सारे दुःख और क्लेश दूर हो जाते हैं। भगवान् ने इस स्थिति का वर्णन करते हुये गीता में कहा है–**यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः। यस्मिन स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते**'। अर्थात् योगी ऋतम्भरा लाभ से अधिक और कोई लाभ नहीं मानता। बड़े से बड़ा दुःख आ जाने पर भी वह विचलित नहीं होता। अपने संकल्प से बड़े से बड़े दुःख को दूर कर देता है। योगी की इसी स्थिति का वर्णन उपनिषदों में इन शब्दों में हुआ है–

'भिद्यते हृदय ग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे''।

उस परावर आत्मा के दर्शन हो जाने पर हृदय ग्रन्थि का भेदन हो जाता है। सब संशय, भ्रम व मिथ्याज्ञान का छेदन हो जाता है। समस्त शुभाशुभ कर्म एवं संस्कार दग्धबीज हो जाते हैं। अविद्या का उच्छेदन हो जाने के बाद आत्मदर्शन हो जाता है। आत्मस्वरूप में स्थिति के बाद भवसंक्रम नष्ट हो जाता है और दुःखों से आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है। अतः योग साधना ही दुःखों से छुटकारा पाने का एक मात्र साधन है। गीता में भगवान् कृष्ण अपने मुखारविन्द से कहते हैं–

हे अर्जुन ! इस अमृतविद्या को जानो जिससे दुःख का संयोग सदा सदा के लिये नष्ट हो जाता है। उस विद्या का नाम योग है। योग से ही दुःख का वियोग होता है। इसलिये हर बुद्धिमान व्यक्ति को योग के स्वरूप व अमर फल को समझकर अपने जीवन को योगमय बना लेना चाहिये।

* * *

भोग और योग

–स्वामी इन्द्रानन्द उदासीन 'मौनी'

जीवन के दो ही प्रयोजन समझ में आते हैं–एक भोग और दूसरा योग। भोग का अर्थ है जागतिक पदार्थों को आसक्तिपूर्वक जानना और उन्हें सुखबुद्धिपूर्वक पाने की चेष्टा करना। इस जानने और पाने के मूल में रहती है अविद्या और भ्रान्ति। इस अविद्या को ही शास्त्रों में भ्रम, विपर्यय, माया, अज्ञान, अविवेक आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। चेतन आत्म तत्व अपने सत्स्वरूप से विमुख होकर जब शरीर, इन्द्रिय, मन, और बुद्धि से साथ एकता कर लेता है और फिर उन्हीं को मैं–मेरा मानकर जीने लगता है तब उसका यह जीना ही भोग और भोगमय जीवन कहा गया है। महर्षि पतञ्जलि ने अपने दर्शन में इसे सुन्दर ढंग से सूत्रगत किया है–

'सत्पुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषोभोगः' (३.३५)

अर्थात् अत्यन्त भिन्न बुद्धि और पुरुष का अभिन्न रूप में ज्ञात होना भोग है। सूत्र को थोड़ा और स्पष्ट करके समझने की कोशित करें। पुरुष यानी आत्मा चेतन स्वरूप है। बुद्धि, जो जड़ प्रकृति का प्रथम सत्व प्रधान परिणाम है उस आत्मा को जगत के सम्पूर्ण विषयों का ज्ञान कराने का प्रधान कारण है। आत्मा ज्ञान का अधिष्ठान है और बुद्धि कारण है। दोनों ही सूक्ष्म हैं और प्रकाश रूप हैं अतः किसी एक अंश में समान रूप हैं वैसे अनेक अंशों में दोनों में अत्यंत वैरूप्य भी है जैसे बुद्धि जड़ है, त्रिगुणात्मक है। पुरुष चेतन और निःस्त्रैगुण्य या त्रिगुणातीत है। पुरुष स्वार्थ है और बुद्धि परार्थ है आदि अत्यन्त भिन्न ये दोनों तत्व आत्मा और बुद्धि थोड़ी सी साम्यता और सारूप्यता को लेकर सन्निधि या सामीप्य करके एकाकार यानी अभिन्न प्रतीत होने लगते हैं। इस अभिन्न प्रतीति को ही भोग कहते हैं। समस्त लौकिक जीवों की भोगावस्था ही रहती है यानी पुरुष ज्ञान, बोध और बुद्धि वृत्ति रूप ज्ञान, दोनों दो न अनुभव में आकर एक को ही अनुभव होता है। इसी को पञ्चशिखाचार्य ने अपने सूत्र मे कहा है–

'एकमेव दर्शनं ख्यातिरेव दर्शनम्'

अर्थात्–व्युत्थान काल में यानी व्यवहार दशा में पुरुष और बुद्धि का एक जैसा ही दर्शन या प्रकाशन होता है, अर्थात् दोनों की प्रतीति एक ही रूप से होती है। यह प्रकाशन बुद्धि वृत्ति रूप का ही होता है। यही बात महर्षि पतञ्जलि ने अपने सूत्र १/४/ मे कही है–

'वृत्तिसारूप्यमितरत्र'

अर्थात् व्यवहार काल में जिस प्रकार की चित्तवृत्तियाँ बनती हैं, पुरुष भी उसी प्रकार से स्थिर होता है, व्यवहार काल में पुरुष और बुद्धि का एकत्व या अविवेक रहता है, इसे ही जीव की तादात्म्यावस्था अथवा आध्यासिकावस्था भी कहते हैं। इस अवस्था का मूल कारण अविद्या है। अविद्या, या ज्ञान का अभाव नहीं है बल्कि उल्टा–ज्ञान, भ्रान्त–ज्ञान अथवा ऐसा ज्ञान जो वास्तविक नहीं है। शरीर आदि जड़ है, अनित्य है, अपवित्र है और दुःख रूप है उन्हें नित्य, पवित्र चेतन और सुखरूप मानकर जीना यही भोगमय जीवन है यही अविद्या में जीना है। अविद्या के रहते हुये जो शुभ अशुभ और शुभाऽशुभ मिश्र कर्म किये जाते हैं वे और उनकी वासनायें ही जीवन के बंधन की कारण बनते हैं। वे वासनायें ही इस जन्म को और आगे आने वाले जन्मों को और उनके भोगों को बनाने में कारण होती हैं। योग दर्शन सूत्र २/१२/ में कहा है–

'क्लेश मूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्म वेदनीयः'

अर्थात् जिन कर्म संस्कारों के मूल में अविद्या आदि पञ्च क्लेश रहते हैं वह ही इस जन्म और अगले जन्मों में फलदायी होते हैं। इस अवस्था में पड़ा जीव धर्माधर्म, सुख दुःख और राग द्वेष की भयंकर चक्कर में फंसा हुआ सदा सर्वदा रहट के डोल की तरह ऊँची नीची योनियों में बंधायमान रहता है। यह संसार चक्र षडर कहलाता है। षडर यानी छः अरों वाला। धर्माधर्म से सुख दुःख, सुख दुःख से राग द्वेष और राग द्वेष से फिर धर्माधर्म। भगवान शंकराचार्य जी ने इसी स्थिति के लिये लिखा है–

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम्

यही बात श्रीमद्भगवद्गीता में चित्त की सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी वृत्तियों को लेकर कही गई है–

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्य गुण वृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः

अर्थात् त्रिगुणात्मक बुद्धि के सत्वगुण में स्थित पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकों को, रजो गुण में स्थित पुरुष मध्य में अर्थात् मनुष्य लोक में और तमोगुण में स्थित हुये पुरुष अधोगति को अर्थात् तिर्यक योनियों को प्राप्त होते हैं। उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन का निगलितार्थ यह हुआ कि जड़, बुद्धि और चेतन आत्मा जो वस्तुतः दृश्य और द्रष्टा है, उनके पार्थक्य को यानी भेद को न जानकर व्यवहार करना ही भोग है और यही अविवेक है। इस जड़ चेतन के अविवेक को ही उपनिषद में हृदय ग्रन्थि कहा है–

'भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः
क्षियन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन दृष्टे परावरे'

अर्थात् उसे यानी ज्ञानी को पर और अवर यानी चेतन रूप पुरुष और जड़ रूप चित्त

के भेद का विवेकपूर्ण साक्षात हो जाने से हृदय ग्रन्थि का भेदन हो जाता है। उसके सम्पूर्ण संशय और कर्मासक्ति नष्ट हो जाती है। तुलसीदास जी ने उत्तरकाण्ड के अंत में इस गाँठ की सुन्दर चर्चा की है–

'जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परिगई' श्रीमद्भगवद्गीता में अध्याय तेरह के अंतिम श्लोक में इसे ही क्षेत्र क्षेत्रज्ञ कहकर समझाया है–

'क्षेत्र क्षेत्रज्ञ योरेव मन्तर ज्ञान चक्षुषा'

अर्थात् इस जड़ चेतन रूप क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के भेद को जो योग के द्वारा साक्षात्कार कर लेता है वह परमानन्द स्वरूप ब्रह्म को पा जाता है। यह विवेक ज्ञान ही योग है। योगशास्त्र में इसे विवेक ख्याति कहा गया है। विवेक शब्द का अर्थ है दो मिले हुये पदार्थों को अलग–अलग करना। यहाँ बुद्धि और पुरुष के भिन्नत्व विविक्त रूपत्व का बोध ही विवेक ख्याति है। यही सम्प्रज्ञात योग है। योग को ही सम्प्रदाय और प्रस्थान भेद से मुक्ति, कैवल्य, अपवर्ग, निर्वाण, ज्ञान, ब्रह्म, स्वरूप आदि अनेक नामों से उद्धृत किया जाता है। भोग यानी अविवेक में जीते हुये जन्म–मरण के चक्कर में फंसे रहना और योग यानी विवेक पूर्ण अपने आनन्द स्वरूप को प्राप्त हो जाना। यहाँ एक शंका हो सकती है कि भोग जीवन का प्रयोजन कैसे हो सकता है जबकि वह अविद्या का कार्य है और परिणामतः दुःख अभाव और जन्म मृत्यु के चक्कर में फंसाये रहता है। असल बात यह है कि भोगासक्ति के कारण ही तो हमारा जन्म होता है। अविद्या के रहते हुये जो कर्म बनते हैं उनके धर्माधर्म के संस्कार ही तो नया जन्म और उस जन्म की आयु और सुख दुःखात्मक भोग बनाते हैं तो उन्हें भोगना आवश्यक होता है।

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्मशुभाऽशुभम्'

योग दर्शन में सूत्र ४.३० के भाष्य में व्यास जी महाराज ने लिखा है कि–

'नहि क्षीण विपर्ययो कश्चित् कोनचित् क्वचिच्च जातो दृश्यत इति'।

अर्थात् नष्ट हुये अज्ञान वाला कोई भी प्राणी किसी के द्वारा कहीं भी उत्पन्न हुआ नहीं देखा जाता इसके आगे भी लिखा है–

'विपर्ययोभवस्य कारणम्' अर्थात् विपर्यय, भ्रान्तियाँ, अविद्या ही जन्म का कारण है। योग वशिष्ठ में भी ब्रह्मा जी ने वशिष्ठ जी को कहा है, हे पुत्र! तुम थोड़ा सा अज्ञान धारण करो और रघुकुल में पौरुहित्य स्वीकार करो। कहने का तात्पर्य है कि भोग यद्यपि अंतिम लक्ष्य नहीं है लेकिन एक अंश तक उन्हें भोगना और फिर उनका त्याग ये दोनों ही आवश्यक हैं। मानवेतर प्राणी तो केवल भोगों से ही परिचित रहते हैं और फिर भोगों के लिये ही जन्म लेते हैं। इसीलिए उनकी मात्र भोग योनि ही कही गई है। सृष्टि में मनुष्य बुद्धिमान प्राणी माना गया है। वह जब यह अनुभव करता है कि विषय भोगों का स्वरूप ही ऐसा है कि ये बंधनकारक स्वभाव वाले होते हैं। ज्यों–ज्यों हम विषयों को भोगते जाते हैं,

त्यों–त्यों इन्द्रियों की उन्हें भोगने की कुशलता बढ़ती जाती है और उनके प्रति लालच बढ़ता जाता है अतः तुलसीदास जी के शब्दों में–'ज्यों-ज्यों सुरझन बहत ज्यों-त्यों उरझत जात।' यही बात महाराज भरथरी ने वैराग्य शतक में कही है–

'भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता' अर्थात् हमने भोग नहीं भोगों ने ही हमें भोग लिया। आगे एक सुन्दर और प्रसिद्ध श्लोक में कहा है–

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्ण वर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।

अर्थात् विषयों के भोग की इच्छायें उन्हें भोगने से शान्त नहीं होतीं बल्कि जैसे अग्नि ईंधन डालने से अधिक प्रज्जवलित होती है वैसे ही भोगासक्ति भी उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। पुराणों में कथा आती है कि महाराज ययाति ने अपने बेटों की जवानी माँग–माँग कर भी भोग भोगे पर जब उनकी तृष्णा किसी भी प्रकार शान्त न हुई तब उन्होंने कहा कि एक व्यक्ति को संसार की सारी स्त्रियाँ और संसार का सम्पूर्ण धन भोग भोगने के लिए दे दिया जाय फिर भी वह तृप्ति अनुभव नहीं कर सकता। कहने का तात्पर्य है कि बुद्धिमान मनुष्य जब यह अनुभव कर लेता है कि भोग वस्तुतः ही अतृप्ति कारक है और उनके द्वारा सुख और आनन्द की प्राप्ति असम्भव ही है तब उस विवेकी पुरुष को भोगों के भोगने के सुखकाल में भी दुःख की ही प्रतीति होने लगती है। योगदर्शन में सूत्र ही है कि–

'परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुण वृत्ति विरोधाश्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।

यो. द ३/१५/

अर्थात् चार प्रकार के दुःख–परिणाम दुःख, ताप दुःख, संस्कार दुःख और गुणवृत्ति विरोध दुःख तो बुद्धिमान को सुख भोग काल में भी बने रहते हैं। यहाँ शंका होती है कि अगर उपर्युक्त चार प्रकार के दुःख, सुख काल में भी भोगों में बने रहते हैं तो वे दुःख बुद्धिमान और विवेकी को ही क्यों अनुभव में आते हैं। वे जब हैं ही, तब तो सबको यानी विवेकी अविवेकी दोनों को ही प्रतीत होने चाहिये। व्यास जी महाराज भाष्य में बताते हैं कि बुद्धिमान 'अक्षि पात्र कल्प' होते हैं। यानी जैसे एक छोटा तिनका अथवा कीड़ा शरीर के घोंट, पीठ, कन्धे आदि किसी अंग पर पड़ जाता है तो वह मालूम भी नहीं पड़ता लेकिन अगर वही आँख में पड़ जाय तो अत्यन्त दुःखदायी हो जाता है। ठीक इसी प्रकार भोगों के सुखकाल में भी उपस्थित जो दुःख हैं वे केवल विवेकी को ही अनुभव में आते हैं सबको नहीं और इसीलिए उस विवेकी को भोगों से वैराग्य होने लगता है और वे उन भोगों को त्यागने लगते हैं। यह त्याग ही योग है। योग के यद्यपि अनेक नाम और रूप हैं जैसे कर्मयोग, भक्तियोग, हठयोग, राजयोग, ज्ञानयोग आदि लेकिन इन सम्पूर्ण के अन्तर में त्याग ही मुख्य साधन है। चाहे वह त्याग वृत्तियों का निरोध रूप हो, चाहे लौकिक वैदिक कर्म त्याग हो चाहे तन–मन की चंचलता का त्याग हो और चाहे विषय वासना का त्याग

हो। श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान कृष्ण ने स्पष्ट ही कहा है–

श्रेयोहि ज्ञानमभ्यासा ज्ञानाद्ध्यान विशिष्यते।

ध्यानात्कर्मफल त्यागारत्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।। /१२/१२/

क्योंकि अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है और ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है ध्यान से भी सब कर्मों का मेरे लिये फल का त्याग श्रेष्ठ है और हे अर्जुन त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है। योगों के नाम शतशः लिये जा सकते हैं परन्तु ध्येय सबका एक ही है, भोगों के प्रति अनासक्तिपूर्वक ब्रह्म साक्षात्कार। यही सर्वदुःखों की निवृत्तिपूर्वक परमानन्द अथवा परमशान्ति है। और इसका उपाय है त्याग। सम्यक त्याग के लिये आवश्यक है सम्यक विवेक या ज्ञान। अन्यथा तो अज्ञान में किया गया त्याग भी भोग ही है, योग नहीं। इसी सम्यक विवेक के लिये भोग को भी पूर्णतः हेय न मानकर जीवन के लिये आवश्यक और प्रयोजनीय माना है। सृष्टि के आदिकाल से ही मनु आदिक वैदिक ऋषि, मुनि एवं धर्म वेत्ताओं ने निरन्तर वेदों के अध्ययन, मनन चिन्तन और जीवन के संघर्षपूर्ण अनुभवों के बाद निष्कर्ष रूप में कहा–

'भोगापवर्गार्थं तद्दृश्यम्'

अर्थात् यह दृश्य जगत जीवों के भोग और अपवर्ग, यानी लोग इन दो हेतुओं के सम्पादनार्थ है। इसके लिये वैदिक संस्कृति की अगर स्पष्टतम् कोई पहचान विशेषता और गहनतम् गुणवत्ता है तो वह है भोग और योग का सामन्जस्यपूर्ण समन्वय। सनातन आर्य संस्कृति यद्यपि मूलतः आध्यात्मिक और धार्मिक ही है लेकिन व्यवहार की किंचित मात्र भी उपेक्षा के साथ नहीं। यहाँ के धर्म की भी अगर सुन्दरतम् और सर्वमान्य कोई परिभाषा है तो वह है–

'यतोभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः सधर्मः'

अर्थात् धर्म वह है जिससे इह लोक और परलोक दोनों का उत्कर्ष प्राप्त हो। आर्य संस्कृति का ठोस और महत्वपूर्ण रूप वर्णाश्रम व्यवस्था के रूप में दृष्टिगोचर होता है। इस सम्पूर्ण व्यवस्था में भोग और योग अथवा भोग और त्याग का समन्वय ही मुख्य आधार प्रतीत होता है। लगता है जैसे वेद के **'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा'** यानी त्यागपूर्वक भोगों की पीठिका पर ही इस सम्पूर्ण व्यवस्था का सृजन किया गया है। यही है जिओ और जीने दो या (Live and let live) का सरलतम् और सुन्दरतम् व्यवहारिक और पारमार्थिक सत्य। वर्णाश्रम व्यवस्था में आश्रमों में व्यक्तिगत जीवन की दृष्टि से और वर्णों में सामाजिक किंवा सामूहिक दृष्टि से जो जो कर्म कर्तव्य अथवा जिम्मेदारियाँ सौंपी गई थीं उनका मूलभूत आधार यही त्यागमय भोग का मूल मंत्र था।

***

श्री गुरुदेव का स्पष्ट निर्देश

—केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

हमारे एक वरिष्ठ एवं आदरणीय गुरुभाई है, जो ब्राह्मण जाति के हैं एवं इस समय, केन्द्रीय सरकार की सेवा से रिटायरमेन्ट के बाद आगरा जनपद के शहरी क्षेत्र में निवास कर रहे हैं। जहाँ तक मेरा अनुमान है, उनको सरकारी सेवा से रिटायर हुये लगभग दस वर्ष हो रहे होंगे। निरोग एवं स्वस्थ शरीर है। इस समय उनके अन्दर नौजवानों की तरह आश्रम का कार्य करने की शक्ति एवं उत्साह है। श्री योगेश्वर द्वय की उनके ऊपर अहैतुकी कृपा है। श्री गुरुदेव भगवान के चरणों में अनुराग उन्हें विरासत में मिला है। कहने का तात्पर्य यह है कि इनके आदरणीय माता–पिता जी श्री गुरुदेव भगवान के चरणानुरागी आज्ञा पालक लाड़ले शिष्य रहे हैं।

आदरणीय भाई जी की पुत्री ने जब इलेक्ट्रॉनिक ट्रेड से इन्जीनियरिंग स्नातक परीक्षा पास कर ली, जो उसकी आन्तरिक इच्छा थी, तो आदरणीय भाई जी ने उसकी शादी करना उचित समझा एवं उसके लिये समुचित घर–वर की तलाश करना आरम्भ किया। कई जगह दौड़ने के बाद बुलन्दशहर (उ०प्र०) में उन्हें एक रिश्ता मिला। लड़का इलैक्ट्रीकल इन्जीनियरिंग से स्नातक परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास किये था तथा एक प्राइवेट फैक्ट्री में सोलह हजार रुपये माहवारी पर कार्यरत था। लड़के की आर्थिक एवं पारिवारिक स्थिति लगभग इनके समतुल्य ही थी। इसी दरम्यान इनके एक हितैषी मित्र ने, इन्हें एक और लड़के की जानकारी दी, जो इलैक्ट्रॉनिक इन्जीनियरिंग से स्नातक की परीक्षा पास कर एक प्राइवेट फैक्ट्री में इन्जीनियर के पद पर कार्यरत था तथा उसका वेतन बीस हजार रुपये मासिक था। लड़के का पारिवारिक स्तर, इनसे अच्छा तथा उसके परिवार की हैसियत लगभग इनसे दुगुनी थी। लड़के का घर हरियाणा प्रान्त के गुड़गाव शहर में था। इनके हितैषी मित्र ने इन्हें वचन दिया था कि यदि शादी तुम्हें पसन्द आ गयी तो मैं वहीं बच्ची की शादी करा दूँगा।

इन्होंने अपनी बच्ची की शादी हेतु गुड़गाँव शहर घर–वर की वास्तविक जानकारी प्राप्त करने के लिये यात्रा आरम्भ की। आगरा से दिल्ली पहुँच गये एवं वहाँ से बस द्वारा गुड़गाँव शहर के लिए प्रातः काल निकल पड़े। जिस रास्ते से होकर बस को गुजरना था, उस पर फ्लायी ओवर ब्रिज का निर्माण कार्य चल रहा था। अतः सभी वाहन एकल रास्ते से होकर आ–जा रहे थे, जिसके कारण जाम लगा हुआ था। जिस बस से यह यात्रा कर रहे थे, वह बस भी जाम में फँस गयी। बस बहुत धीरे–धीरे जाम में चल रही थी। दस पन्द्रह मिनट जाती थी, तो दस पन्द्रह मिनट एक स्थान पर जाम में फँस कर खड़ी रहती

थी। यह कार्यक्रम लगभग तीन घन्टे तक चला। जिस सवारी बस पर भाई जी बैठे थे, उसकी कुछ सीटें बिल्कुल ही खाली थी तथा शेष सीटों पर निर्धारित संख्या से कम सवारी बैठी हुई थीं। जिस सीट पर आदरणीय भाई जी बैठे थे, दो सवारी की सीट थी तथा ये अकेले बैठे थे। गाड़ी जब पहली बार जाम में फँसी, उसी समय एक आदमी आकर इनके दाहिने तरफ बैठ गया। इस आदमी की उम्र करीब छप्पन–सत्तावन साल की थी। बिल्कुल गौर वर्ण, लम्बाई लगभग छः फीट, सफेद शर्ट एवं सफेद पैन्ट, जो नया होने का आभास करा रहे थे, चमचमाता काला जूता, सिर पर काली टोपी तथा ललाट पर कस्तूरी रंग का छोटा गोलाकार तिलक धारण किये हुये थे। जब बस जाम में फँसी थी या यों कहा जाय कि अपना टिकट खरीदने के बाद जब से आदरणीय भाई जी, यात्रा आरम्भ करने के लिये अपनी सीट पर बैठे, आँख बन्द कर अपने गुरुमंत्र का जाप कर रहे थे।

दूसरे यात्री के अपने बगल में बैठने का अन्दाज लगने पर इन्होंने अपनी आँख खोली एवं आँख खोलने पर उपरोक्त प्रकार के यात्री को अपनी बगल वाली सीट पर बैठा पाया। जब दोनों आदमी की आँखें एक हुयी तो उस आदमी ने हमारे आदरणीय भाई जी से प्रश्न किया, "क्यों गुड़गाँव जा रहे हो ?" इन्होंने कहा कि हाँ, मैं गुड़गाँव ही जा रहा हूँ। क्या अपनी बच्ची की शादी के सम्बन्ध में लड़का देखने जा रहे हो ? आदरणीय भाई जी ने फिर हाँ में उत्तर दिया। उस आदमी ने कहा कि वह लड़का जिसे तुम शादी के सम्बन्ध के लिये जा रहे हो, बल्की' (मोटापे के शरीर वाला) है। तत्पश्चात् उसने फिर कहा कि तुम्हारी बच्ची भी तो बल्की शरीर वाली है। अपनी बगल में बैठे आदमी की ये बातें सुनकर आदरणीय गुरुभाई जी ने कहा, "गुड़गाँव तो अभी मैं पहली बार जा रहा हूँ, अतः लड़के के शरीर की बनावट के सम्बन्ध में मुझे कोई जानकारी नहीं है, परन्तु आपको कैसे पता कि मेरी लड़की बल्की शरीर की है ?" उस आदमी ने उत्तर दिया कि तुम्हें देखकर इन बातों की जानकारी हमें स्वतः हो गयी। ऐसा लगता है कि मैंने तुम्हें कहीं देखा है। श्री मथुरा वृन्दावन में तुम कभी रहे हो क्या ? इन्होंने उत्तर दिया कि मथुरा जनपद में, मैंने कई वर्ष नौकरी की है एवं परिवार के साथ भी रहा हूँ। उन्होंने कहा कि हो सकता है हमारी–तुम्हारी मुलाकात वहीं हुयी हो।

परम आदरणीय भाई जी ने कहा कि मैं आप को नहीं पहचानता, उस विशिष्ट आदमी ने कहा कि मैं तुम्हें अच्छी प्रकार से पहचान रहा हूँ। उस विशिष्ट व्यक्ति ने फिर कहा कि एक बात तुम्हें और बतला देना चाहता हूँ। वह यह है कि वह लड़का जिसे तुम शादी के निमित्त देखने जा रहे हो ड्रिंक (शराब पीना) भी करता है। इतनी बात करने के बाद उस विशिष्ट व्यक्ति ने कहा कि मुझे भी गुड़गाँव ही जाना था, लेकिन ऐसा लगता है कि बिना गये भी मेरा कार्य हो जायेगा। दोनों आदमियों में बात जब तक हो रही थी, बस बहुत धीमी गति से जाम के कारण चल रही थी। बात समाप्त होते–होते बस जाम में फँसा कर खड़ी हो गयी एवं बस खड़ी होते ही वह विशिष्ट व्यक्ति बस गाड़ी से नीचे उतर कर चले

गये। आदरणीय भाई जी कुछ समय तक सोचते रहे कि यह विशिष्ट व्यक्ति कौन थे ? बस से नीचे उतरने से पूर्व उस विशिष्ट व्यक्ति ने एक बात और बतलायी, उन्होंने कहा कि बुलन्दशहर में जो लड़का तुमने बच्ची की शादी के लिये देखा है, वह तुम्हारी लड़की के लिये सर्वथा अनुकूल है। आदरणीय भाई जी ने कहा कि उस लड़के का ट्रेड इलेक्ट्रीकल है, हमारी बच्ची का ट्रेड इलैक्ट्रॉनिक है, जो गुड़गाँव वाले लड़के का है। साथ ही इसकी सांसारिक हैसियत बुलन्दशहर वाले से दुगुनी है, अतः हमें तो वही लड़का पसन्द आने की उम्मीद है। उस विशिष्ट व्यक्ति ने कहा कि हमें जो कुछ बतलाना था, बतला दिया, एक बात और जो शेष है बतला देता हूँ। यदि तुमने अपनी बच्ची की शादी गुड़गाँव वाले लड़के से की तो तुम्हारी बच्ची तिरासी प्रतिशत सुख पायेगी एवं यदि बुलन्दशहर वाले लड़के से की तो बच्ची छानवे प्रतिशत सुख पायेगी। इतना कह कर वह चल दिये।

उस विशिष्ट व्यक्ति के बस गाड़ी से नीचे उतरने के बाद आदरणीय भाई जी उनकी बातों का मनन करते रहे परन्तु कोई निष्कर्ष नहीं निकाल पाये। बस जाम में फंसते निकलते आगे की यात्रा तय कर रही थी तथा भाई जी मानसिक जाप कर रहे थे। अन्ततः वे गुड़गाँव वाले लड़के के घर पहुँच ही गये। घर पहुँच कर उचित अभिवादन के बाद आदरणीय भाई साहब को चाय–नाश्ता वगैरह कराया गया। श्री भाई जी ने अपनी बाहरी नजर से देखा, तो सांसारिक सामग्रियाँ उस लड़के के घर पर सुव्यवस्थित ढंग से प्रचुर मात्रा में दिखलायी दीं। पहले तो उनका मन बहुत ही प्रसन्न हुआ परन्तु एक बात जो बस में मिले महापुरुष ने इन्हें बतलायी थी, जब याद आयी तो उनका मन थोड़ा उदास हो गया।

अब आदरणीय भाई जी ने सोचा कि सर्व प्रथम बस में मिले महापुरुष की बातों का रहस्य जान लेना चाहिये। मन में यह भाव आने पर उन्होंने घर के मुखिया (मालिक) से कहा कि लड़के को बुला दीजिये, मैं उससे कुछ बात करना चाहता हूँ। घर के मालिक ने कहा, "हाँ, क्यों नहीं, अभी बुला रहा हूँ।" उसने (घर के मालिक) ने आवाज लगायी एवं नौकर तत्काल ही घर से बुला कर बाहर लाया। नौकर के साथ घर से बाहर आते समय इन्होंने जब लड़के को देखा तो आदरणीय भाई जी को बस में मिले उस विशिष्ट व्यक्ति के प्रथम वाक्य पर शत प्रतिशत विश्वास हो गया, क्योंकि लड़का की मोटाई उसके स्वस्थ शरीर की परिचायक नहीं बल्कि सूजन जैसी है। इसके बाद आदरणीय भाई जी ने लड़के से कहा कि बेटा, मैं तुमसे एकान्त में कुछ बात करना चाहता हूँ। बालक ने कहा कि अच्छी बात है, आइये। इसके बाद लड़के ने भाई जी के साथ चन्दकदम की दूरी पर स्थित एक कोठरी में प्रवेश किया, जिसमें कोई नहीं था और कोठरी में पलंग एवं अच्छी प्रकार का सोफा सुव्यवस्थित ढंग से लगाया गया था। लड़के ने कमरे का दरवाजा लगभग बन्द जैसा कर दिया एवं आदरणीय भाई जी को सोफे पर बैठने का निवेदन कर, स्वयं सोफे पर उनके सामने बैठ गया।

जब दोनों आदमी एक दूसरे के सामने बैठ गये तो लड़के ने निवेदन किया कि बोलिये साहब ! क्या पूछना चाहते हैं ? श्री भाई जी ने कहा कि बेटा ! पहले तुम यह वचन दो कि मैं तुमसे जो कुछ प्रश्न करूँगा उसका उत्तर सत्य-सत्य ही बतलाओगे। उस बालक ने कहा कि मैं वचन देता हूँ कि आप के प्रश्नों का बिल्कुल सत्य ही उत्तर दूँगा, चाहे हमारी बातें आपको अप्रिय ही क्यों न लगे। इसके बाद श्री भाई जी ने कहा कि मुझे तुमसे यही आशा थी। तदन्तर आदरणीय भाई जी ने प्रश्न किया कि बेटा ! तुम्हारे परिवार का खान पान कैसा है ? बालक ने उत्तर दिया, "सुनो जी ! हमारे घर का खान-पान बिल्कुल शुद्ध शाकाहारी है। घर पर माँस-मछली और मुर्गा कभी नहीं बनता है। घर के भोजन में लहसुन-प्याज पड़ता है तथा परिवार के सभी लोग लहसुन-प्याजयुक्त भोजन का सेवन करते हैं। यहीं एक बात और सत्य-सत्य बतला देना चाहता हूँ कि परिवार का पुरुष वर्ग घर से बाहर माँसाहार का सेवन करता है एवं हमारे परिवार में इस पर कोई प्रतिबन्ध या पाबन्दी नहीं है। इस माँसाहार को बुरी या खराब नजर से नहीं देखा जाता। हाँ, इतना जरूर है कि किसी भी परिस्थिति में घर के भोजनालय में माँसाहार नहीं बन सकता।"

आदरणीय भाई जी ने दूसरा प्रश्न किया कि तुम ड्रिन्क करते हो या नहीं ? उस बालक ने उत्तर दिया कि मैं ड्रिन्क करने का आदती तो नहीं हूँ परन्तु प्राइवेट कम्पनी में सप्ताह में दो-तीन दिन अवश्य ही, कम्पनी के क्लब को अटेन्ड करता हूँ (उपस्थित रहता हूँ) एवं उस समय ड्रिन्क भी करता हूँ। आदरणीय भाई जी ने बालक की पीठ थपथपायी एवं कहा कि तुम्हारी बिल्कुल सत्य बातें सुनकर मुझे बेहद प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है और इसलिये की तुम बिल्कुल सत्यवादी हो। मेरी प्रसन्नता का एक कारण यह भी है कि यदि तुम चाहते तो बड़ी आसानी एवं चालाकी से सत्य बातों को छुपाकर असत्य भाषण कर सकते थे क्योंकि मुझे तुम्हारे परिवार के आन्तरिक बातों का रंचमात्र भी ज्ञान नहीं था, लेकिन तुमने ऐसा नहीं करके; हमारा मन जीत लिया है। इसके बाद श्री भाई जी, बालक के साथ उस कोठरी से बाहर आये। श्री भाई जी ने लड़के के पारिवारिक जनों के साथ फिर जलपान एवं नास्ता किया एवं लड़के का "राशि एवं पुकार" का नाम लेकर अपने घर की यात्रा आरम्भ किये। यात्रा के अधिकांश समय यह सोचते रहे कि मुझे सही एवं कल्याण मार्ग पर चलने की सलाह देने वाले, बस में मिलने वाले विशिष्ट महापुरुष कौन थे ? श्री सिद्धयोग पत्रिका के सुयोग्य पाठक एवं साधक भी अब यह समझ ही गये होंगे कि यह कार्य सिद्ध योगेश्वर का ही है। यह कृपा प्रसंग सन् दो हजार तीन का है। आदरणीय भाई जी ने फरवरी दो हजार चार में अपनी बच्ची की शादी, श्री सिद्ध योगेश्वर द्वारा निर्देशित एवं नामित लड़के से की। इस नव दम्पत्ति को इस समय लगभग साल-डेढ़ साल की एक लाड़ली बच्ची है।

"धन्य है ऐसे गुरुभक्त-गुरुभाई एवं अकथनीय है श्री गुरुदेव की कृपा"

अध्यात्म-सिद्धि का गणितीय सूत्र

लेखक : डा० ऋषिराम शर्मा

मेरे परमप्रिय भाईयों तथा बहिनों ! आप सभी मेरे पूज्यास्पद सद्गुरुदेव के कृपा–पात्र हैं तथा सभी की गुरुदेव के वचनों में तथा सत्शास्त्रों में पूर्ण श्रद्धा है। इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर अपने उन विचारों को सूत्रबद्ध किया है जो मुझे गुरुदेव तथा शास्त्रों के सत्संग से कृपा–प्रसाद के रूप में अनुग्रहीत हुए हैं। यद्यपि यह लेख लगभग २०० पृष्ठ का है किन्तु मैं इसे अपने गुरुदेव के चरणों में अवयवों में विभक्त करके "श्री सिद्धयोग पत्रिका" के लिए भेज रहा हूँ। अध्यात्म ज्ञान सम्पूर्ण ज्ञान तथा विज्ञान की परिसीमा है। योगेश्वर महर्षि पतंजलि ने स्पष्ट किया है कि

"तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्य अनन्त्यात् ज्ञेयं अल्पम्"

अर्थात् अध्यात्मसिद्धि के पश्चात् महामाया के अविद्याजनित मलावरण के नष्ट होने पर जो अध्यात्मज्ञान प्राप्त होता है, उसकी अनन्तता के सापेक्ष सभी ज्ञान अल्प है, क्योंकि–

$$\frac{100000}{\infty} = \frac{1000000}{\infty} = \frac{(10)^{10}}{\infty} = \frac{(10)^{1000}}{\infty} = \text{.....} = 0$$

इसी कारण वेदवाणी है कि

"आत्मनि विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति"

अर्थात् अध्यात्म–ज्ञान होने पर कुछ भी ज्ञेय शेष नहीं रहता। इस अनन्तज्ञान को प्राप्त करने के लिए सूत्र में तीन मुख्य अध्यात्म–मार्गों का समावेश है, वह हैं I साधन–योग, II सिद्ध–योग, III ज्ञान–योग। सूत्र के तीनों गुणनखण्ड धनात्मक हैं जिनमें यह तीनों मार्ग इस जन्म के पुरुषार्थ के रूप में दर्शाये गये हैं। इन तीनों मार्गों का अन्तिम गन्तव्य स्थान अध्यात्म–सिद्धि है। यह तीनों मार्ग परस्पर सामन्जस्य रखते हुए एक ही दिशा में परमपिता परमात्मा की छत्रछाया में सुरक्षित हैं, स्थान स्थान पर परस्पर अतिक्रमण करते हैं तथा संस्कारों के आधीन भिन्न–भिन्न समय तथा दूरियाँ तय करते हैं।

गणितीय सूत्र

$$S = [I + RY(R\text{-}I)(g+G)\exp\{Dg(R+I)\}]^{10}_{I} \times [I + R(L+O+Y)\exp\{LG(R+I)\}]^{10}_{II} \times [I + R(R\text{-}I)(M+O+I+G+Y)\exp\{K\,R/W\}]^{10}_{III}$$

Where

S = Spiritual attainment (अध्यात्म–सिद्धि)

I = Spiritual imprints from previous births
(पूर्वजन्मों के आध्यात्मिक संस्कार)
R = Ratio of detachment of mind from worldly attractions to the attachment of mind in them (वैराग्य)
Y = Practice of Yoga (योग–साधना)
g = Grace of God (भगवत्कृपा)
G = Grace of Guru (गुरुकृपा)
exp = एक्सपोनेन्शियल फलन (exponential function)
D = Devotion of God (ईश्वर–भक्ति)
L = Devotion of Guru (गुरु–भक्ति)
O = Renunciation of worldly bonds (सन्यास)
M = Meditation of Self (विवेक–ज्ञान)
K = Knowledge of God (परमात्म–ज्ञान)
W = Worldly desires
Suffix I = साधन–योग (राजमार्ग)
Suffix II = सिद्ध–योग (आकाशमार्ग)
Suffix III = ज्ञान–योग (पिपीलिकामार्ग)

इस गणितीय सूत्र के रहस्यों को जानने के लिए सर्वप्रथम हमें सूत्र के अवयवों का संक्षेप में परिचय कराना होगा। तत्पश्चात् तीनों मार्गों में उनका योगदान तथा महत्त्व को समझना होगा। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इनमें से किसी भी मार्ग पर चलते हुए हम कैसे अध्यात्म–सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। अध्यात्म–सिद्धि का सम्बन्ध परमात्म भाव की प्राप्ति से है और परमात्मा अचिन्त्य, अनिर्देश्य तथा प्रकृति की दर्शनशक्तियों की सामर्थ्य तथा पहुँच से परे है। जो विषय बुद्धि की विश्लेषण शक्ति की सामर्थ्य से बाहर है, उसके लिए प्रत्यक्ष प्रमाण तथा अनुमान प्रमाण तो व्यर्थ ही हैं, केवल आगम प्रमाण का ही आधार है जिसके द्वारा रहस्यों का उद्घाटन तथा प्रमाणत्व सिद्ध होता है। अतः मैंने इस लेख में इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि प्रत्येक विचार तथा तथ्य शास्त्र द्वारा प्रमाणित होना चाहिये। सौभाग्य से हमारे शास्त्र त्रिकालदर्शी तथा तत्वज्ञानी महापुरुषों की वाणी तथा उनके उद्गार हैं।

सूत्र का वर्णन करने से पूर्व उसकी भूमिका भी आवश्यक है। इसलिए यह समझना भी आवश्यक है कि जिस संसार के आवागमन से मुक्ति चाहिए वह संसार है क्या ? परमात्मा की सृष्टि में प्रत्येक वस्तु के तीन रूप हैं। प्रथम उसका स्थूलरूप है जोकि इन्द्रियों का विषय है, द्वितीय उसका सूक्ष्मरूप है जोकि उसका बीज है तथा सूक्ष्म बुद्धि

का विषय है। तृतीय उसका कारणरूप है जिसका सम्बन्ध प्रत्येक वस्तु के मूलकारण (उपादान तथा निमित्त) पराशक्ति से है। भगवान शिव की वाणी है कि–

"चैतन्यात् सर्वमुत्पन्नं जगदेतत्चराचरम्।
अस्ति चेत्कल्पनेयं स्यात् नास्ति चेदस्ति चिन्मयम्।।

(शिवसंहिता १/८४)

अर्थात् यह जड़ तथा चेतन जगत एक ही परमचैतन्य सत्ता से उत्पन्न हुआ है उसका जो नामरूप का स्थूलरूप दिखाई देता है वह स्वप्नजगत जैसा कल्पना मात्र है अथवा अविद्यारूपी अन्धकार के कारण सीप में चांदी की भ्रांति जैसा मिथ्या ज्ञान है। परमात्मा की चैतन्यसत्ता ही संसार का अधिष्ठान है, ठीक उसी तरह जिस तरह पर्दे पर दीखने वाले फिल्म जगत का अधिष्ठान प्रकाश किरणें होती हैं। आध्यात्मिकता का सम्बन्ध परमात्मा के स्वरूप की प्राप्ति से है और परमात्मा अचिन्त्य, अनिर्वचनीय तथा प्रकृति की दर्शनशक्तियों की पहुँच से परे है। सगुणरूपधारी परमात्मा का दिव्य शरीर भी बुद्धि की सामर्थ्य के बाहर है, क्योंकि जीवात्मा की आँखों का बुद्धियोधात्मक दृष्टा उसे नहीं देख सकता, तभी तो जगदात्मा श्रीकृष्ण ने स्पष्टरूपेण कहा कि–

"न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।।

"इहैकस्थं जगत् कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद द्रष्टुमिच्छसि।।
"तत्रैकस्थं जगत् कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
अपश्यत् देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा।।"
पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थम्
ऋषींश्च सर्वान् उरगांश्च दिव्यान्।।
अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम् पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप।।

अर्थात् हे अर्जुन ! तुम अपनी इन अविद्यामोहित आँखों से मेरे सर्वव्यापी दिव्य शरीर को नहीं देख सकते। मेरे इस प्रकृति–पुरुष के संयोग तथा उसके ऐश्वर्य को नहीं देख सकते। अतः मैं अपनी योगशक्ति से तुम्हें दिव्य ज्ञानचक्षु प्रदान कर रहा हूँ जिससे तुम मेरे दिव्य शरीर को देख सको। तभी अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण के स्थूल शरीर में ही समस्त ब्रह्माण्ड यथावत बंटा हुआ देखा, समस्त देवतागण, पृथिवी आदि उपग्रहों के समस्त प्राणी,

दिव्य लोकों के अधिपति ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा सभी सिद्ध योगी, ऋषि–मुनि तथा अन्य दिव्य शरीर धारी नागलोक आदि के प्राणी देखे, अनेक प्रकार के हाथ–पैर मुख तथा नेत्र वाले असीमित आकाश में अनन्त विस्तार वाले जगत का परिचय कराना चाहता हूँ।

"यावान् वै अयमाकाशः तावानेवान्तर्हृदयाकाशः
उभे अस्मिन् द्यावा पृथिवी अन्तरेव समाहिते" (छान्दो० ८/१/३)

अर्थात् जिस प्रकार का यह अनन्त आकाश दिखाई देता है वैसा ही अनन्त आकाश हृदय के अन्तर्गत समाया हुआ है और दोनों में पृथिवी तथा स्वर्गलोक आदि दिव्य लोक समाहित है, बस इसे देखने के लिए दिव्य–चक्षु की आवश्यकता है। जगदात्मा श्रीकृष्ण ने भी इसकी पुष्टि की है कि

"उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुन्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढ़ाः नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा।।

अर्थात् शरीर धारण करते हुए, शरीर छोड़ते हुए, भोग भोगते हुए अथवा मायिक गुणों के प्रभाव में रहते हुए इन सभी अवस्थाओं में रहते हुए उस परम पुरुष को अज्ञानी जीवन नहीं देख सकते। इन रहस्यों को समझने के लिए दिव्य ज्ञानचक्षु की आवश्यकता होती है। इसलिए सिद्ध योगी ही इन रहस्यों को जान सकता है।

सूत्र में परमात्म भाव प्रदान करने के लिए प्रमुखतः तीन मार्गों का निर्देश है। यह हैं (१) साधन मार्ग, (२) सिद्धमार्ग (३) ज्ञानमार्ग। सूत्र के तीनों गुणनखण्ड (Factors) धनात्मक (positive) तथा एक्सपोनेन्सियल फल का argument अनुकूल परिस्थिति में अनन्तता की ओर ले जाने की सामर्थ्य रखता है जिसके बिना परमार्थ सिद्धि संभव ही नहीं। तीनों मार्गों का अन्तिम गन्तव्य स्थान परमात्मा का धाम अध्यात्म–ज्ञान है। यह तीनों मार्ग समानान्तर सड़कों की तरह हैं जो दूरी तय करने में परस्पर सहयोगी हैं और पथिक की योग्यता के अनुसार सुविधाजनक हैं, फिर भी सत्गुरु का निर्देशन अत्यावश्यक है अन्यथा भटकने के भी अवसर विद्यमान हैं।

यह संसार एक भयानक जंगल के समान है जिसमें कटीली तथा विषैली झाड़ियों का जाल सा बिछा है। इस जंगल से बाहर निकलने का एक ही द्वार है। यह गेट (द्वार) मनुष्य–योनि है। इन्द्रियों के विषय–भोगों की विषैली झाड़ियाँ हैं, उनमें रजोगुण तथा तमोगुण के काँटे हैं तथा इन्हीं में होकर यह तीन गुप्त मार्ग जाते हैं। जिनमें मनुष्य योनि रूप मोक्षद्वार से ही प्रवेश संभव है। किन्तु इन मार्गों से केवल निष्कासन यानि बहिर्गमन के स्थान पर अनेक शाखाऐं हैं जो जंगल में ले जाती हैं परन्तु वापसी की अनुमति नहीं। वापसी के लिए पुनः प्रवेशद्वार पर ही आना होगा परन्तु वहाँ भी मोक्ष जिज्ञासा तथा विवेक–वैराग्य का प्रवेश–टिकट चाहिए। इसका कारण यह है कि मनुष्य–योनि के अतिरिक्त अन्य सभी योनियाँ भोग–योनियाँ हैं अर्थात् प्रारब्ध–कर्म के फल का भुगतान तो

होता है किन्तु कर्म करने यानि विवेक–पूर्वक कोई लक्ष्य बनाकर कर्म–साधना का अधिकार नहीं। योगारूढ होने के लिए साधना के द्वारा पुण्यों का संचय आवश्यक है।

अब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सूत्र के अवयवों (parameters) का परिचय कराना चाहता हूँ।

१. S : परमात्मभाव (Spiritual attainment)

हम सबके लिए यह बड़े सौभाग्य की बात है कि परमात्मा की कृपा से हमें मनुष्य–योनि प्राप्त हो गयी है, क्योंकि इसी योनि में जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि आदि सभी दुखों से मुक्ति पाकर अमृतत्व की प्राप्ति संभव है। वास्तव में यही हमारा परम लक्ष्य है। यही परमात्मभाव की प्राप्ति है। परमात्मा अनन्त (∞) है, अतः उसकी प्राप्ति के साधनों में भी अनन्तता का गुण आवश्यक है।

यह संसार भाव प्रधान है, क्योंकि परमात्मभाव से इसकी उत्पत्ति होती है, जीवात्म भाव से इसकी स्थिति बनी रहती है और जीवात्म भाव के परमात्मभाव में लीन होने पर यह लोप हो जाता है। भगवान् श्री कृष्ण अपने मुखारविन्द से कहते हैं कि–

"मयाध्यक्षेण प्रकृति सूयते सचराचरम्
हेतुनानेन कौन्तेय जगत् विपरिवर्तते।।

अर्थात् परमात्मा की अध्यक्षता यानि नियन्त्रण में प्रकृति ही इस समस्त जड़ तथा चेतन संसार की रचना करती है तथा प्रकृति के निश्चित नियमों के आधार पर इसमें परिवर्तन होते रहते हैं। महाप्रलय में यह लोप हो जाता है और पुनः पुनः परमात्मभाव से प्रकट होता है, क्योंकि–

"प्रकृतिं स्वामभिष्टव्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नं अवशं प्रकृतेर्वशात्।।

अर्थात् परमात्मा ही अपनी ही प्रकृति में प्रविष्ट होकर सभी प्राणियों की पुनः उत्पत्ति करता है जोकि प्रकृति के कर्मविधान के अनुसार यथावत होती है। यह सब कैसे होता है इस प्रकार वेद प्रमाण है कि–

"मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्"
"शक्तिद्वियं हि मायायाः विक्षेपावृतिरूपकं
विक्षेपशक्तिः लिंगादिब्रह्माण्दान्तं जगत सजेत्,
आवरणेत्यपरा शक्तिः या संसारस्य कारणम्"

"यथाग्नेः क्षुद्राः विस्फुल्लिंगाः व्युच्चरन्ति
एवमेव एतस्मात् आत्मनः सर्वे प्राणाः"

"एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुः ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी।।

"स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयः मनोमयः प्राणमयः चक्षुर्मयो श्रोत्रमयः"

"एको देवः सर्वभूतादिगूढः सर्वव्यापिः सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः सर्वसाक्षी केवलो निर्गुणश्च।।

"सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं
प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञाप्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म"

अर्थात् परमात्मा की वेदवाणि बताती है कि जिस प्रकार अग्नि से निकलने वाली अनेक रूप वाली ज्वालायें यानि लपटें निकलती हैं उनमें कुछ अग्नि का तेज, रंग तथा ज्वलनशक्ति अपने साथ लाती हैं और कुछ लोहादि पदार्थों के सम्पर्क में आने पर उनमें अपने गुणों का प्रवेश कर देती है तो कुछ धुँआ के रूप में अपने रंग तथा ज्वलनशक्ति को त्यागकर अन्धकार में लुप्त रहती हैं, ठीक इसी प्रकार परमात्म भाव से प्राणरूपी लपटों की उत्पत्ति होती है, जो चैतन्यमयी जीवसृष्टि की भी उत्पत्ति करती हैं तो कुछ जड़ पदार्थों तथा प्रकृति रूपी माया को उत्पन्न कर अज्ञानरूपी अन्धकार को भी उत्पन्न करती है।

(क्रमशः)

क्या संभव, क्या असंभव ?

इस जगत को हम भगवान की क्रीड़ा भूमि और समस्त प्रपंच को उनके खेल का साज–सामान मान लें तो न फिर कोई झंझट है, न वाद–विवाद है। भगवान अनेक तरह से खेल रहे हैं। उनकी क्रीड़ा में न कोई सम्भव है, न असम्भव। आज लोग गर्व करते हैं–हमने इंजन बनाया, तार बनाये, हम यह कर देते हैं, वह कर देते हैं, मैं कहता हूँ–तुम पृथ्वी का एक कण बना सकते हो ? जल की एक बूँद बना सकते हो ? विद्युत की एक किरण तैयार कर सकते हो ? वायु का एक श्वांस उत्पन्न कर सकते हो ? नहीं, तो सब व्यर्थ हैं। माया में क्या संभव, क्या असंभव ? सभी संभव है, सभी असम्भव है।

–पूज्यपाद प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

वन्दे कृष्णम् जगद्गुरुम्

निर्मला चन्देल (उदयपुर)

श्री कृष्ण हैं परम् ब्रह्म के अवतार
संसार-सागर के हैं आधार
कृष्णलीला है ब्रह्माण्ड का विस्तार
जीवन के तत्वों का है प्रकाश
अधर्म के हैं विनाशक
धर्म के हैं संचारक
ज्ञान के हैं परम तत्व
चित्तानन्द के हैं प्राणाधार
गीता, ज्ञान की है अनुभूति
है कृष्ण मन का उच्छ्वास
हैं योग मानव मन के परिष्कार
हैं जीवन के अमर उपदेशाधार
कृष्ण धरा के युगाचार्य
कर्म ज्ञान के हैं दाता
भक्त हृदयों के, मार्जित कर्त्ता
हैं सत्य ज्ञान के प्रणेता
जीवन के हैं आधार
सच्चिदानन्द हैं, कृष्णम् जगदगुरु
वन्दे कृष्णम् जगद्गुरुम्
वन्दे कृष्णम् जगद्गुरुम्

❊ ❊ ❊

दिव्यीकरण, योग का प्रथम सोपान

किसी सद्भाव का आत्यन्तिक अभिनिवेश चित्त में होकर भी तब तक नहीं ठहरता जब तक अपनी मानवी बोधशक्ति बदलकर दिव्य नहीं हो जाती–दिव्य भाव को आत्मसात् कर सकने में कुछ काल लगता है। जब जीव स्वयं अबोध–सा रहता है तब आत्मसात् करने की यह क्रिया परदे के अन्दर ऊपरी आवरण से छिपकर भीतर हुआ करती है और ऊपरी आवरण की बोधशक्ति को केवल मूढ़ता की सी स्थिति का अनुभव होता है और ऐसा भी प्रतीत होता है कि जो कुछ दिव्य भाव–सा पहले मिला था वह भी चला गया; पर जब जीव जागता है, उसकी बोधशक्ति जाग उठती है, तब वह देख सकता है कि किस प्रकार भीतर–ही–भीतर आत्मसात् करने की क्रिया हो रही है, और कोई भी दिव्य भाव पाया हुआ नष्ट नहीं हुआ है, बल्कि जो दिव्य भाव उतर आया था वह अब स्थिर होकर बैठा है।

विशालता और अपार शान्ति और मौन का साधक को जो अनुभव होता है वह आत्मा–शान्त ब्रह्म है। कई योगों का तो इसी आत्मा या शान्त ब्रह्म को पाकर उसमें रहना ही एकमात्र ध्येय होता है। परन्तु हमारे योग में तो भगवत्सत्ता की अनुभूति का तथा जीव के क्रमशः उस भगवच्चैतन्य को प्राप्त होने का–जिसे हम दिव्यीकरण कहते हैं–यह केवल प्रथम सोपान है। ❊ ❊ ❊

योगदर्शन और गीता में साधना का महत्व

प्रेषक-वेदव्रत द्विवेदी, उमापुर

योगदर्शन एक बड़ा ही महत्वपूर्ण और साधकों के लिए परम उपयोगी शास्त्र है जिसके प्रणेता भगवान पतंजलि देव जी हैं। उन्होंने किसी भी शास्त्र की तरह किसी विषय विशेष पर खण्डन-मण्डन नहीं किया है अपितु समाधि अवस्था में अनुभूति परक विचारों को निर्बीज समाधि में अजन्मा विभु उस विशुद्ध परम ब्रह्म अखण्ड चेतन परम पुरुष विशेष को ईश्वर का दर्जा दिया है-'**क्लेश कर्म विपाक आशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।**' को योग सूत्र में पिरोकर अखण्ड मण्डलाकार अनादि सिद्ध सद्गुरुओं को योग की प्राप्ति के साथ मंजिल तक दर्जा दिलाने के लिए सिद्ध सद्गुरुओं की श्रेणी में योग का मार्ग दर्शन देकर योगी साधक के लिए भगवत् प्राप्ति के लिए सुगम एवं सरल रास्ता बताया है।

अनादि महासिद्धों की श्रेणियां जब भी इस अवनिमंडल पर अवतरित हुआ करती हैं तो उनका मूल उद्देश्य भोग से योग की प्राप्ति तक एवं मोक्ष द्वार तक ले जाने दूरुह एवं दुस्तर कठिन मार्ग को सुगम बनाने के लिए प्रत्येक युग में योगावतार हुआ करता है। अनादिकाल से सत्युग में भगवान विष्णु का अवतार इसी बात का परिचायक है, जिन्होंने परम योगी ब्रह्मर्षि नारद जी को अपना ही शिष्य ही नहीं परन्तु एक उच्च कोटि का योगी बनाया था। इसी परिप्रेक्ष्य में त्रेता में अनादि महासिद्ध मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम ने अवतार लेकर परम सुभट हनुमान जी को दिव्य योग की साधना द्वारा अठ्ठारह निधियों का खजाना देकर परम योगी बना दिया।

योगयोगेश्वर कृष्ण भगवान ने भी द्वापर में अवतरित होकर उस अज्ञानी जीव अर्जुन को सत्पथ एवं योग की साधना द्वारा विराट स्वरूप का दर्शन देकर अपना शिष्य ही नहीं एक पूर्ण योगी बना दिया। श्री मद्भगवद्गीता का उपदेश सुनकर अर्जुन का मोह समाप्त होने लगा तथा भय से कम्पित अर्जुन को यथार्थ ज्ञान यथार्थ गीता से ही प्राप्त हुआ जो भगवान श्री कृष्ण की अमृतमय वाणी है।

अतएव कल्याण की इच्छा वाले मनुष्यों को उचित है कि मोह का त्याग कर अतिशय श्रद्धापूर्वक ज्ञान गीता का रसोपान कर अर्जुन की तरह प्रत्येक योगी साधक मोह त्याग कर युद्ध के लिए तैयार हो जाए. भगवान ने गीता में दो बातें अर्जुन को बतलाई पहली बात तो यह है कि अर्जुन ! नपुंसकता को मत प्राप्त हो तुझमें यह उचित नहीं जान पड़ती। हे अर्जुन हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिए खड़ा हो जा-

"**क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नै तत्वय्युपपद्यते।**
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।। (श्रीमद्० गीता २/३)

दूसरी बात भगवान योग योगेश्वर श्री कृष्ण चन्द्र जी ने उस गूढ़ रहस्य का बोध कराया जो संसारी जीव विशुद्ध आत्मा द्वारा उस परमात्मा का साक्षात्कार नही कर पाता। वह बड़ा ही पापी और आत्म हत्यारा है इसके लिए हे अर्जुन मेरे पहले कहे हुए शब्दों को ध्यान से सुनने के बाद हृदयानुभूति करो तभी यथार्थ ज्ञान लाभ मिल सकता है। ज्ञानी और ज्ञात ही बनकर श्रेय पुरुष को जाना जा सकता है। जो कई जन्म जन्मान्तरों से तेरे अन्दर वासना छिपी हुई है काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर इन पाँचो चोरों से युद्ध करो जो तुम्हारे मार्ग में बाधक है। भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र की बात सुनकर सारा अज्ञान जाता रहा वास्तविकता भी यही है जब तक विषय वासना से ग्रसित यह जीव भोगों की तरफ दौड़ रहा है तब तक वह परम पुरुष में एकाकार नही हो सकता। वह निष्काम भाव होकर ही ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। इसके लिए तो त्याग और मोह कि बलि वेदी पर सम्पूर्ण अहन्ता को त्याग कर कामनाओं का त्याग ही सच्ची सुखानुभूति है और जीव उस परमब्रह्म में लीन हो जाता है। सम्पूर्ण संसार के पदार्थों और कर्मों में तृष्णा और फल की इच्छा एवं ममता आसक्ति का सर्वथा अभाव होने पर भी उनमें सूक्ष्म वासना और कर्तृत्वाभिमान शेष रह जाता है इसलिए सूक्ष्म वासना और अहम् भाव को त्यागने का एक सरल उपाय यह है कि अनादि महासिद्ध परमपिता परमेश्वर द्वारा क्रियायोग द्वारा **तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।। १।।**

सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के मुखारविन्द द्वारा दिया गया दिव्य महामंत्र पहली क्रिया का पहला योग साधन है। बार-बार अनवरत मंत्र जाप करने से उन सद्गुरुदेव की कृपा से ध्यान में परिवर्तित होने लगता है। बशर्ते कि साधक की श्रद्धा अपने एकनिष्ठ गुरुभक्ति में हो। सद्गुरु देव भगवान के चरणों में ध्यान करने से सूक्ष्म वासना जो रह जाती है वह भी समाधि के अन्तिम अवस्था निर्बीज में समाप्त हो जाती है।

योगी साधक का पहला कर्तव्य यह है कि आलस्य को त्यागकर गुरुदेव जी द्वारा बताए हुए मार्गों पर चलकर अपने इसी जन्म में कम से कम भय प्रत्यय तक पहुँच जाय। यह क्रिया योग की साधना सिद्ध योग की वास्तविक साधना है।

परमपिता परमेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी के चरणों में कोटिशः प्रणाम करते हुए उन करुणा निकेतन से यही मूक प्रार्थना करते हैं कि अपने चरण कमलों में अपने सभी साधक बच्चों पर अपनी वरद हस्त कृपा बनाए रखें तथा सुविज्ञ पाठकों से भी विनम्र निवेदन है कि लेख की त्रुटियों को ध्यान में रखते हुए क्षमा करने की महती कृपा करें।

सद्गुरु समान ब्रह्माण्ड में मिला न दूजा कोय।
नाम लिए पातक नसै ध्यान किए हरि होय।।

सादर जय गुरुदेव !

क्या होगा प्रभु, क्या होगा ?

—जगदीश राय बंसल 'अधम' (गोहाना)

क्या होगा प्रभु क्या होगा, मेरी जिन्दगी का क्या होगा।
अज होगा या कल होगा, मुझे गुरु दर्शन कब होगा।। टेक।।

यम नियम का संयम ना, ध्यान धारणा का लक्षण ना
योग समाधि का क्या होगा।। मेरी जिन्दगी.....

चार धाम अब होता ना, कांशी मथुरा की चर्चा ना।
संवाई धाम का क्या होगा ! मेरी जिन्दगी.....

गंगा यमुना ध्याया ना, प्रयाग जी फूल चढ़ाया ना
गंगा सागर का क्या होगा ! मेरी जिन्दगी.....

ज्ञान यज्ञ कभी किया ना, मानुष कर्ज चुकाया ना
अज्ञात वास का क्या होगा ! मेरी जिन्दगी.....

प्रारब्ध तो बदलता ना, क्रियामाण मेरा सुधरता ना
संचित कर्म का क्या होगा ! मेरी जिन्दगी.....

वेद शास्त्र के दाता हो, सृष्टि के निर्माता हो
गीता ज्ञान का क्या होगा ! मेरी जिन्दगी.....

प्रभुराम लाल के प्यारे हैं, लाखों पापी तारे हैं
मुझको सहारा मिल जाएगा ! मेरी जिन्दगी.....

६८ तीर्थ श्री चरणों में, ऋद्धि सिद्धि खड़ी आज्ञा में
क्या मेरा गोता लग जाएगा ! मेरी जिन्दगी.....

अशरण शरण के दाता हो भव सागर पार लगाते हो
क्या योग का बन्डल खुल जाएगा ! मेरी जिन्दगी.....

आश्रम के कर्म कमाए ना गुरु के थपेड़े खाए ना
"अधम" पुर्नजन्म क्या होगा ! मेरी जिन्दगी.....

***

गुरुदेव के मार्गदर्शन की अपरिहार्यता

दृष्टिकेतु सिंह पुण्डीर, अलीगढ़

यदि आप उसकी खोज करना चाहते हैं जो शाश्वत है, सब जगह व्याप्त है और सबमें निहित है, तब सामान्य ऊर्जा जो तुम में निहित है, पर्याप्त नहीं है। यदि आप ईश्वर की खोज करना चाहते हो, ऊर्जा तुम्हारे पास है, चारों ओर घूमने के लिए कुछ काम करना और कुछ धन कमाना, पर्याप्त नहीं होता है। तुम्हें ज्यादा ऊर्जा की आवश्यकता होगी। चाहे आप शत प्रतिशत ऊर्जा दे रहे हैं उस प्रकार की ऊर्जा साधारण रूप से पर्याप्त नहीं है। साधना का सम्पूर्ण ध्येय है–स्वयं की ऊर्जा को बढ़ाना क्योंकि जब आप असीमित की तलाश में हैं, चाहे आप के पास कितनी भी ऊर्जा हो, यह अपर्याप्त मालूम पड़ती है।

आध्यात्मिक खोजकर्ता के लिए एक सारभूत आवश्यकता अबल ऊर्जा स्रोत की होती है जो जीवन के विशिष्ट ध्येय को प्राप्त करने में सहायक हो जिससे उच्चतम (ईश्वर) की प्राप्ति हो सके, इससे कम नहीं। यदि कोई ऐसा व्यक्ति है जो बिना किसी व्यवधान के अपने को ईश्वर से जोड़ सकता है तो वह आशीर्वादित है। लेकिन हममें से अधिकांशतः थपेड़ों में अपना जीवन जीते हैं कुछ क्षण दौड़ते हैं फिर रुक जाते हैं अथवा पीछे खिसकने लगते हैं। इस प्रकार से जीवन नष्ट होता है। कुछ ऐसे होते हैं जो कार्य शुरू कर देते हैं, फिर रुकते नहीं हैं। वे अपना कार्य जारी रखते हैं।

दूसरे लोग कार्य शुरू करते हैं और रुक जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिए ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है जो हर समय उन्हें प्रेरित करता रहे। जब जरूरत पड़े तो चित्त की स्थिरता के लिए उन्हें गाजर खाने को देता रहे और छड़ी भी दिखाता रहे। कभी–कभी गाजर काम नहीं करती है तब छड़ी का सहारा लिया जाता है।

रामकृष्ण परमहंस तीन प्रकार के गुरुओं का वर्णन करते हैं और उनकी तुलना मैडीकल डॉक्टर्स से करते हैं। प्रथम प्रकार के डॉक्टर्स मरीज को देखते हैं, उसकी नब्ज महसूस करते हैं और आवश्यक दवाई निर्धारित करते हैं और उससे नियमित रहने को और नियमित दवा लेने को कहते हैं। यदि मरीज दवा नहीं लेता है तो डॉक्टर उसके बारे में कोई ध्यान नहीं देता है। इसी प्रकार कुछ गुरु ध्यान नहीं देते हैं कि क्या उनके उपदेशों को महत्व दिया जाता है, उनके अनुसार कार्य किया जाता है या नहीं ?

द्वितीय प्रकार के डॉक्टर्स मरीज को अपनी दवा लेने को कहते तथा वे इससे आगे जाते हैं। इस प्रकार के गुरु विनम्र प्रेरणा से दूसरे व्यक्तियों को सत्य निष्ठा और धर्मपरायणता के मार्ग पर चलाने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ते हैं।

तृतीय प्रकार के गुरु आदर्श गुरु होते हैं। ये गुरु देखते हैं कि मरीज निर्धारित दवा लेता है और उसे उच्चतम (ईश्वर) तक पहुँचने में सहायता करता है। मार्ग में जो भी कठिनाइयाँ आती हैं उन्हें दूर करने में सहायक होता है।

जीवन के हर क्षेत्र में तीन प्रकार के व्यक्तियों का अस्तित्व होता है। रामकृष्ण जी तृतीय प्रकार के गुरु को ही क्यों उच्चतम समझते हैं ? क्योंकि ऐसा गुरु अप्रिय होने का भी जोखिम उठाता है, क्रूर होने का भी जोखिम उठाता है, और अदैवी समझे जाने का भी जोखिम उठाता है। इस प्रकार के गुरुओं की क्यों आवश्यकता होती है ? क्योंकि अपने स्वभाव से आप एक मेढ़क के समान हैं। जिस तरफ मेढ़क एक मच्छर को देखता है तो वह उसी दिशा में दौड़ जाता है। इस तरीके से आप कहीं नहीं पहुँच सकते हो। तुम केवल अपना पेट भर सकते हो। यदि उदर भरना ही हमारा ध्येय है तो यह सब कुछ ठीक है। उच्चतम क्षेत्र में पहुँचने के लिए रास्ते के प्रलोभनों को छोड़ना होगा और सद्गुरु की शरण लेनी होगी। सद्गुरु की जीवन में अति आवश्यकता है। तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में कहा है :–

गुरु बिन भव निधि तरइ न कोई। जो बिरंचि संकर सम होई।।
संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता।।

अर्थात् गुरु के बिना कोई भव सागर नहीं तर सकता, चाहे वह ब्रह्मा जी और शंकर जी के समान ही क्यों न हो। (गरुड़ जी ने कहा–) हे तात ! मुझे संदेह रूपी सर्प ने डस लिया था और (सांप के डसने पर जैसे विष चढ़ने से लहरें आती हैं वैसे ही) बहुत–सी कुतर्क रूपी दुःख देने वाली लहरें आ रही थीं।

❋ ❋ ❋

जनमानस में से दुष्प्रवृत्तियों को हटाकर उनके स्थान पर सद्प्रवृत्तियों की स्थापना करना अत्यन्त ही उच्च कोटि का एवं महत्वपूर्ण कार्य है। पूर्वकाल में लोकनायक तथा मार्गदर्शक ऋषि–मुनिगण आत्म शक्ति से सम्पन्न थे। वे केवल वाणी से ही नहीं अपनी आन्तरिक महानता की किरणें फेंककर जनमानस को प्रभावित करते रहे। मस्तिष्क की वाणी मस्तिष्क तक पहुँचती है तथा आत्मा की आत्मा तक। कोई सुशिक्षित व्यक्ति अपनी ज्ञान–शक्ति का लाभ सुनने वालों को उनकी जानकारी बढ़ाने के लिए वाणी द्वारा देता है। किन्तु अन्तःकरण में जमी हुई आस्था में परिवर्तन का कार्य ज्ञान से नहीं आत्म–शक्ति से ही सम्पन्न हो सकता है। प्राचीन काल के ऋषि–मुनि इस तथ्य को भली–भाँति जानते थे। इसीलिए वे दूसरों को उपदेश देने में वाणी द्वारा सेवा करने में कम तथा अपना आत्म–बल में अधिक समय लगाते थे, तपस्या करते थे।

सच्ची सद्गुरु भक्ति

अंशुमान मालवीय

हमारे देश में गुरु शिष्य की परम्परा शुरू से ही चली आ रही है। गुरु के बिना ज्ञान अधूरा होता है इस बात की मान्यता हमारे शास्त्र देते हैं और उसी का अनुसरण हम करते हैं। और गुरु की आज्ञा मानना हमारे लिये सबसे बडा धर्म है गुरु की आज्ञा का पालन करना तथा इनके बताये सन्मार्ग पर चलना ही शिष्य का सबसे बड़ा धर्म है चाहे वह किन्हीं परिस्थितियों में करना पड़े। एक ऐसी घटना का वर्णन करना यहाँ उचित होगा।

एक गुरु थे जिनका नाम गुरु धौम्य था। गुरु धौम्य अपने आश्रम में ही गुरुकुल की स्थापना कर अपने शिष्यों के साथ रहा करते थे और अपने शिष्यों को अच्छा संस्कार देना तथा अच्छी शिक्षा देना ही उनका सबसे बड़ा लक्ष्य था।

एक दिन की बात, वर्षा बहुत तेज हुई और गुरु धौम्य को इस बात की चिन्ता हुई कि आश्रम के खेत में पानी मेड़ तोड़ कर बहने न लगे। तभी उन्होंने अपने सबसे आज्ञाकारी एवं कर्तव्यनिष्ठ शिष्य आरूणि को बुलाया और बोले शिष्य आरूणि तुम तुरन्त आश्रम के खेत पर जाओ और फसल को नष्ट होने से बचाओ। शिष्य आरूणि गुरु की आज्ञा पाकर तुरन्त खेत की तरफ चल दिया। वहाँ पहुँचने पर शिष्य आरूणि ने टूटे हुये मेड़ को सही करने की कोशिश की परन्तु मिट्टी बार-बार बहे जा रही थी। अन्त में शिष्य आरूणि स्वयं टूटे हुये मेड़ पर लेट गया।

इधर गुरु धौम्य सोच में डूब गये कि आखिर इतना देर हो जाने पर भी शिष्य आरूणि अभी क्यों नहीं आया तब गुरु धौम्य गहन विचार के बाद अपने शिष्यों के साथ शिष्य आरूणि की खोज में निकल पड़े जब गुरु धौम्य आश्रम के खेत के पास पहुँचे तो देखा कि शिष्य आरूणि खेत की मेड़ पर स्वंय लेटा हुआ है तब गुरु धौम्य ने अपने शिष्य आरूणि को उठाकर गले से लगा लिया।

गुरु की आज्ञा का महत्व शिष्य आरूणि के लिए इतना महत्वपूर्ण था कि उसने अपने आपकी चिन्ता न करके अपने गुरु की आज्ञा का पालन किया। शिष्य आरूणि की तरह हम सभी शिष्यों को श्री सद्गुरु देव भगवान जी की आज्ञा का पालन करना चाहिये। क्योंकि इसी में हमारा कल्याण छिपा हुआ है।

आप सभी सुयोग्य पाठकों से मेरा यह विनम्र निवेदन है कि लेख की त्रुटि पर न ध्यान देकर इसके पवित्र भावों को ग्रहण करने का कष्ट करें तथा श्री सद्गुरु देव भगवान को ही अराध्य मानकर इन्हीं की आरती पूजन एवं कृपा चरित्र का वर्णन सदैव करें।

***

इक अर्ज मेरी तुमसे !

राजेश कुमार सिंह, रौंहुआ (बलिया)

इक अर्ज मेरी तुमसे, श्री रामलाल भगवान;
योगमय सृष्टि हो तेरी, योगी हर इंसान।

मानस हो तैयार यहां पर, बोये न बुरे बीज,
रमा रहे प्रभु चरणों में, गुरुमंत्र ताबीज,
ध्यान, धारणा और समाधि, गुरुभक्ति में लीन,
काम, क्रोध व लोभ, मोह से, दूर रहे ये दीन,
घर-घर में हो योग की चर्चा, और गुरु का गान;
योगमय सृष्टि हो तेरी.....

तेरी कृपा से पाहन भी, मंदिर में रखे जाते हैं,
मरे जीवों के खाल की, ध्वनि प्रिय हो जाते हैं,
पल में दुनिया रचते हो, संत ये बतलाते हैं,
इक नजर से पापों के, पर्वत भी ढह जाते हैं,
दया करो हे दयानीधे, सबका हो सम्मान;
योगमय सृष्टि हो तेरी.....

प्रेम भरा हो कण-कण में, मन में हो उल्लास,
प्रभु की बगियां ऐसे महके, जैसे हो मधुमास,
संग सूरज के आये प्रभुजी, खुशियों की बारात,
योग अमृत की वर्षा हो, जीवन में दिन-रात,
हर प्राणी को मिले स्वामी, राजेश ये वरदान;
योगमय सृष्टि हो तेरी.....

सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी की सहज कृपा और पावन स्मृतियों का एक संक्षिप्त आलेख

असीम अनुकम्पा

प्रो० विनोद जौहरी

(१)

प्रथम दर्शन

सन् १९५५ की बात है तब मैं प्रयाग विश्वविद्यालय में एम०एस-सी० का छात्र था। ग्रीष्मावकाश में पिताजी के पास आगरा आया था। मेरी माँ संग्रहणी से पीड़ित थी। पता चला कि एत्मादपुर के पास एक सिद्ध महात्मा का आश्रम है जहाँ वह योग साधन द्वारा असाध्य रोगों की चिकित्सा करते हैं। महात्मा जी से मिलने की जिज्ञासा हुई। अगले दिन प्रातःकाल मेरे बड़े भाई और मैं रेलगाड़ी से एत्मादपुर पहुँचे और आश्रम का पता पूछते हुये संवाई गाँव की ओर बढ़ने लगे। उस समय आश्रम जाने के लिये कोई सड़क नहीं थी। बैलगाड़ी द्वारा खेत की पगडंडियों पर होकर जाना होता था। संवाई गाँव से पहले ही पेड़ों के झुरमुट के बीच एक कुटिया से संलग्न प्रांगण दिखाई पड़ा जहाँ नीम के वृक्ष के तले, बाँस की खटिया पर सफेद धोती कुर्ता पहने एक तेजस्वी सज्जन विराजमान थे और अपने समक्ष दो ब्रह्मचारियों को व्यायाम का निर्देश दे रहे थे।

हमने गेरुये वस्त्र धारण किये एक सन्यासी महात्मा की कल्पना की थी। अतएव उस महान योगी को साधारण वेषभूषा में हम पहचान नहीं सके और पूछने लगे कि महात्मा जी कहाँ हैं ? हम लोग उनके दर्शन के लिये आगरा से आये हैं। बड़े प्यार भरे संबोधन से वह बोले "लल्ला, बैठो" उनके व्यक्तित्व में बड़ा आकर्षण था और वाणी में ओज हमने अपनी माँ के उपचार के संबंध में चर्चा की और उन्होंने आश्वासन दिया कि वे जीवन तत्व साधन द्वारा स्वस्थ हो सकती है।

वह दिन हमारे जीवन का स्वर्णिम दिवस था। जिस दिन सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के हम लोगों को प्रथम दर्शन हुये, उसके बाद सदैव के लिये हमारा पूर्ण परिवार उनका अनन्य भक्त बन गया।

(२)

पूज्यपाद गुरुजी की शरण में आने के पश्चात् हमारे (जौहरी) परिवार में अद्भुत घटनायें हुईं। हमारे पिताजी डा० भैरों प्रसाद जौहरी मौंस मछली के बड़े शौकीन थे। घर में बंदूक थी। शिकार पर जाया करते थे। गुरुजी से दीक्षा लेने के बाद हम लोगों का खानपान शुद्ध हो गया और प्रभु जी की अनेक कृपायें होने लगीं। जिसमें से एक का यहाँ

विशेष वर्णन करेंगे।

हमारी मौसी श्रीमती प्रभा जौहरी क्षय रोग से पीड़ित थीं। उन्हें फेंफड़ों की टी.बी. थी। आज से ५० वर्ष पूर्व तपेदिक असाध्य रोग समझा जाता था। उन्हें स्ट्रेप्टोमाइसीन इंजेक्शन के कई कोर्स दिये गये परन्तु वह तपेदिक से छुटकारा नहीं पा सकीं। बाद में उन्हें आँतों की और फिर रीढ़ की हड्डी में भी टी.बी. हो गई। परन्तु वह गुरुजी की परम भक्त थीं। गुरुजी उन्हें समय समय पर पुष्प प्रसाद भेजते थे। जिससे उन्हें ध्यान की अच्छी स्थित बनने लगी। शनैः शनैः वह तीनों प्रकार की टी.बी. से मुक्ति पा गई। प्रभुजी के आशीर्वाद से मौसी जी आज भी हमारे बीच इस संसार में हैं और हमारे पूरे परिवार को अपने ममता भरे वात्सल्य से कृतार्थ करती रहती है। वह टी.बी. जैसे भयंकर रोग से निस्तार तो पा गई परन्तु वह सदैव किसी न किसी शारीरिक रोग से पीडित रही और आज भी है। मन में एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि हमारी मौसी जैसी सात्विक और साध्वी स्त्री को इतने कष्ट क्यों झेलने पड़ते हैं ? गुरुजी कहा करते थे, "देवी, तुम्हारे पूर्व जन्मों के इतने कठिन संस्कार हैं जो तुम्हें इस जन्म में झेलना पड़ रहे हैं।" परन्तु प्रभुजी की ऐसी अनुकम्पा है कि मौसी जी पर जब जब नये कष्ट आते हैं तो प्रभुजी शीघ्र जी उनके समाधान व उपचार का भी प्रबंध कर देते हैं।

मुझे एक घटना याद आती है। मौसी को माइग्रेन के कारण सिर में असहनीय पीड़ा थी। उन्हें सिरदर्द की अनेक दवाई दी गई, कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। उस समय गुरुजी माघ मेले में प्रयाग आये थे। गुरुजी ने संकल्प युक्त प्रसाद भेजा उससे शीघ्र ही उनका सिरदर्द ठीक हो गया। यह एक छोटा सा उदाहरण है गुरु कृपा का। उन आनंदकंद प्रभु जी की ऐसी अनेक कृपायें हमारे जीवन में हो चुकी हैं, जिनका उल्लेख हम आगे करेंगे।

***

अवश्य ही भगवान के नाम की बड़ी महिमा है, पर अनुराग के बिना क्या होगा ? भगवान के लिए प्राण व्याकुल होने चाहिए। अगर मैं मुँह से तो नाम लेता रहूँ पर मन को कामिनी कंचन में ही लिप्त रखूँ, तो उससे क्या लाभ होगा ? अगर बिच्छू ने काटा हो तो सिर्फ मंत्र पढ़ने से जहर नहीं उतरता, कण्डा जलाकर उसका धुँआ भी देना पड़ता है।

—रामकृष्ण परमहंस

श्री रामलाल प्रभवे नमः

योग भेदी है गेह, योग से मान नहीं।
योग साधन के बिना कोई सुधी पाया नहीं।

श्री चन्द्रमोहन पुरवे नमः

प्रभु श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय

गणेश बाजार, झाँसी

(प्रयाग संगीत समिति इलाहाबाद से सम्बद्ध)

द्वारा आयोजित

तीसवाँ अखिल भारतीय योग एवं संगीत सम्मेलन

स्थान : पैवेलियन हॉल (श्री लक्ष्मी व्यायाम मन्दिर) झाँसी

दिनांक 25, 26, 27, 28 एवं 29 अक्टूबर 2006

परम करुणा निकेतन सत्गुरुदेव भगवान योगिराज अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज (श्री सिद्धगुफा सवाई, आगरा) की अकरुणाकृपा से गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी उपरोक्त तिथियों में तीसवाँ अखिल भारतीय योग सम्मेलन लक्ष्मी व्यायाम मन्दिर झाँसी के पैवेलियन हॉल में आयोजित किया जा रहा है। आज योग के महत्व को सारा विश्व स्वीकार कर चुका है। अतः अपने जीवन को योगमय बनाने, जटिल रोगों से छुटकारा पाने एवं अपने आपको स्वस्थ्य रखने की कामना रखने वाले सभी जिज्ञासुओं एवं साधकों से अनुरोध है कि वे इस पाँच दिवसीय योग शिविर में भाग लेकर अपने जीवन को सफल बनायें।

योग सिद्धान्तों के गूढ़ रहस्यों को सरल शब्दों में समझाने हेतु आचार्य श्री चन्द्रहास जी शर्मा (नई दिल्ली) सहित योग के अनेक उद्भट विद्वान पधार रहे हैं, जो योग के अष्टांगों, योग की साधना, पद्धति के सभी अंगों को विस्तार से समझायेंगे। इसके अतिरिक्त संकीर्तन, भजन, ध्यानाभ्यास एवं योगासनों के प्रदर्शन के कार्यक्रम प्रतिदिन सम्पन्न होंगे।

: कार्यक्रम :

• 25, 26, 27, 28 एवं 29 अक्टूबर 2006	श्री प्रभुजी की आरती/संकीर्तन ध्यानाभ्यास–गीतापाठ एवं योग सिद्धान्तों पर प्रवचन	प्रातः 7 से 10.30 बजे तक सायं 7 बजे से 10.00 तक
• 26 एवं 27 अक्टूबर 2006	बुन्देलखण्ड संगीत प्रतियोगितायें	प्रातः 11 बजे से सायं 7 बजे तक
• 27 अक्टूबर 2006	पारितोषिक वितरण	सायं 8.00 बजे
• 28 अक्टूबर एवं 29 अक्टूबर 2006	अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन	दोपहर 2.30 से सायं 7 बजे तक
• 29 अक्टूबर 2006	श्री प्रभुजी एवं गुरुदेवजी का पूजन सम्भार	दोपहर 11 बजे
• 29 अक्टूबर 2006		दोपहर 1 बाद से 2.30 बजे तक

मंगला आरती प्रातः 5 बजे से, आसन व्यायाम, नेति क्रिया प्रातः 6 बजे से 7 बजे तक।

आयोजक :

डॉ. हरिमोहन गुप्ता, अध्यक्ष
इंजी सीताराम गुप्ता, महामंत्री
एवं समस्त सदस्य कार्यकारिणी समिति
प्रभु श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय,
एवं योग सत्संग मण्डल, झाँसी।

पत्रव्यवहार :

93, सिविल लाइंस
बी.जे.पी. कार्यालय, झाँसी
फोन : 0510-2330074
मोबाइल : 9236834487

संयोजक :

कृष्णकान्त झा
प्राचार्य
प्रभु श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय
झाँसी (उ.प्र.)

भ्रमर-जप

भ्रमर के गुञ्जारव की तरह गुनगुनाते हुए जो जप होता है वह भ्रमर-जप कहाता है। किसी को यह जप करते देखने-सुनने से इसका अभ्यास जल्दी हो जाता है। इसमें होठ नहीं हिलते, जीभ हिलाने का भी कोई विशेष कारण नहीं। आँखें झपी रखनी पड़ती हैं। भ्रूमध्य की ओर यह गुञ्जारव होता हुआ अनुभूत होता है। यह जप बड़े ही महत्व का है। इसमें प्राण सूक्ष्म होता है और स्वाभाविक कुम्भक होने लगता है। प्रश्वास धीरे-धीरे होता है, पूरक जल्दी होता है और रेचक धीरे-धीरे होने लगता है। पूरक करने पर गुञ्जारव आरम्भ होता है और अभ्यास से एक ही पूरक में अनेक बार मन्त्रावृत्ति हो जाती है। इसमें मन्त्रोच्चार नहीं करना पड़ता। बंशी के बजने के समान प्राणवायु की सहायता से ध्यानपूर्वक मन्त्रावृत्ति करनी होती है। इस जप को करते हुए प्राण-वायु से ह्रस्व-दीर्घ कम्पन हुआ करते हैं और आधार-चक्र से लेकर आज्ञाचक्र तक उनका कार्य अल्पाधिक रूप से क्रमशः होने लगता है। ये सब चक्र इससे जाग उठते हैं। शरीर पुलकित होता है। नाभि, हृदय, कण्ठ, तालु और भ्रूमध्य में उत्तरोत्तर अधिकाधिक कार्य होने लगता है। सबसे अधिक परिणाम भ्रूमध्य भाग में होता है। वहाँ के चक्र के भेदन में इससे बड़ी सहायता मिलती है। मस्तिष्क में भारीपन नहीं रहता। उसकी सब शक्तियाँ जाग उठती हैं। स्मरणशक्ति बढ़ती है। प्राक्तन स्मृति जागती है। मस्तक, भालप्रदेश और ललाट में उष्णता बहुत बढ़ती है। तैजस परमाणु अधिक तेजस्वी होते हैं और साधक को आन्तरिक प्रकाश मिलता है। बुद्धि का बल बढ़ता है। मनोवृत्तियाँ मूर्छित हो जाती हैं। नागस्वर बजाने से साँप की जो हालत होती है वही इस गुञ्जारव से मनोवृत्तियों की होती है। उस नाद में मन स्वभाव से ही लीन हो जाता है और सब नादानुसन्धान का जो बड़ा काम है वह सुलभ हो जाता है। 'योगतारावली' में भगवान् श्री शंकराचार्य कहते हैं कि भगवान् श्रीशंकर ने मनोलय के सारा लाख उपाय बताये, उनमें नादानुसंधान को सबसे श्रेष्ठ बताया। उस अनाहत संगीत को श्रवण करने का प्रयत्न करने के पूर्व भ्रमर-जप सध जाय तो आगे का मार्ग बहुत ही सुगम हो जाता है। चित्त को तुरन्त एकाग्र करने का इससे श्रेष्ठ उपाय और कोई नहीं है। इस जप से साधक को आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है और उसके द्वारा वह स्वपरहित साधन कर सकता है। यह जप प्रपञ्च और परमार्थ दोनों में काम देता है। शान्त समय में यह जप करना चाहिये। इस जप से यौगिक तन्द्रा बढ़ती जाती है और फिर उससे योगनिद्रा आती है। इस जप के सिद्ध होने से आन्तरिक तेज बहुत बढ़ जाता है और दिव्य-दर्शन होने लगते हैं, दिव्य जगत् प्रत्यक्ष होने लगता है, इष्टदर्शन होते हैं, दृष्टान्त होते हैं और तप का तेज प्राप्त होता है। कविकुलतिलक कालिदास ने जो कहा है—

शमप्रधानेषु तपोधनेषु, गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।

बहुत ही ठीक है—शमप्रधान तपस्वियों में (शत्रुओं को) जलाने वाला तेज छिपा हुआ रहता है।

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

जयपुर (राजस्थान) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना –

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर स्पेस आधार (स्थान मूल्य) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप)
3. पेल आइलों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रोमोशन पैम्पलेट वितरण रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 3.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर इलाका कॉन्सेलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति डाई प्रतिलिपि डाई का मूल्य रु0 400/-
7. नेपथ्य पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आगे भाग पर प्रचार का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। नेपथ्य पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्माद्पुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री

□□□□□□

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/06-08

September, 2006

संस्थापक–योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डा. दाससाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय क्लॉथ एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एत्माद्पुर) आगरा से प्रकाशित। आर. एन. आई. रजि. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब. (डॉ.) दाससाल शर्मा